आदि धरम की कीधी हो,
भर्तक्षेत्र सर्पणी काल में।
प्रभु जुगला धरम निवार,
पहिला नरवर मुनीवर हो।
तीर्थंकर जिनहुआ केवली,
प्रभु तीरथ थाप्या चार ॥श्री०॥२॥

मा "मरुदेवी" थारी हो,
गज हौदे मुक्ति पधारिया।
तुम जनम्या हो प्रमाण,
पिता "नाभिम्हाराजा" हो।
भव देव तणो करी नर थया,
प्रभु पाम्यां पद निरवाण ॥श्री०॥३॥

भरतादिक सो नंदन हो,
वेपुत्री "ब्राह्मी" "सुंदरी"।
प्रभु ए थारां अंगजात,
सघला केवल पाया हो।

समाया अविचल जोत में,
कांइ त्रिभुवन में विख्यात ॥श्री०॥४॥

इत्यादिक वहु तारया हो,
जिन कुल प्रभु तुम ऊपन्या।
कांइ आगम में अधिकार,
और असंख्य तारया हो।
उद्धारया सेवक आपरा,
प्रभु सरणा ई आधार ॥श्री०॥५॥

अशरण शरण कहीजे जो,
प्रभु विरद विचारो साहिवा।
कांइ कहो गरीव निवाज,
शरण तुम्हारी आयो हो।
हूँ चाकर जिन चरना तणो,
म्हारी सुणिये अरज अवाज ॥श्री०॥६॥

तू करुणाकर ठाकुर हो,
प्रभ धरम दिवाकर जग गुरु।

कांइ भव दुःख दुष्कन टाल,
"विनयचंद" ने आपो हो।
प्रभु निजगुण संपतशाश्वती,
प्रभु दीनानाथदयाल ॥श्री०॥७॥

२–श्री अजितजिन–स्तवन

(कुविसन मारग माथे रे धिग–यह देशी)

श्री जिन अजित, नमूं जयकारी,
तुम देवन को देवजी,
जयशत्रु राजा ने विजया राणी को,
आतमजात तुमेव जी।
श्री जिन अजित नमूं जयकारी ॥टेर॥१॥

दूजा देव अनेरा जगमें,
ते मुझ दाय न आवेजी।
तह मन तह चित्त हमने,
तूहिज अधिक सुहावेजी ॥श्री॥२॥

सेव्या देव घणा भव भव में,
तो पिण गर्ज न सारी जी।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तू,
पूरण परउपकारी जी ॥श्री॥३॥

त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो,
फैल रह्यो जग जाने जी।
वंदनीक पुजनीक सकल को,
आगम एम बखाने जी ॥श्री॥४॥

तू जग जीवन अंतरजामी,
प्राण अधार पियारो जी।
सवविधि लायक संतसहायक,
भक्त वत्सल व्रत थारो जी ॥श्री॥५॥

अष्ट सिद्धि नव निद्धि को दाता,
तो सम और न कोई जी।
वधे तेज सेवक को दिन-दिन,
जेथतेथ जय होई जी ॥श्री॥६॥

अनंत-ज्ञान-दर्शन संपति ले,
ईश भयो अविकारी जी ।
अविचलभक्ति 'विनयचंद' को दो,
जाणूं रीझ तुम्हारी जी ॥श्री॥७॥

३-श्री संभवजिन-स्तवन

(आज म्हारा पारसजीने चालो बदन जइए-यह देशी)

आज म्हारा संभव जिनका,
हित चितसूँ गुण-गास्यां ।
मधुर-मधुर स्वर राग अलापी,
गहरे शब्द गुंजास्यां राज ।
आज म्हारा संभव जिनका,
हित चितसूँ गुण गास्यां ॥आ०॥१॥
नृप "जीतारथ" 'सेन्या" राणी,
तासुत सेवकथास्यां ।
नवधा भक्तिभाव सों करने,
प्रेम मगन हुइ ज्ञास्यां राज ॥आ०॥२॥

मन वच काय लाय प्रभु सेती,
निसदिन सास उसास्यां।
संभव जिनको मोहनी मूरति,
हिये निरन्तर ध्यास्यां राज ॥आ०॥३॥

दीन दयाल दीन बंधू के,
खानाजाद कहास्यां।
तन-धन प्राण समरपी प्रभु को,
इनपर वेग रिझास्यां राज ॥आ०॥४॥

अष्ट कर्म दल अति जोरावर,
ते जीत्या सुख पास्यां।
जालम मोहमार को जामें,
साहस करी भगास्यां राज ॥आ०॥५॥

ऊवट पंथ तजी दुरगति को,
शुभगति पंथ समास्यां।
आगम अरथ तणे अनुसारे,
अनुभव दसा जगास्यां राज ॥आ०॥६॥

काम क्रोध मद लोभकपट तजि,
निज गुणसूँ लवलास्यां।
'विनयचंद' संभव जिन तूठ्याँ,
आवागवन मिटास्यां राजा ॥आ०॥७॥

४-श्री अभिनन्दनजिन-स्तवन

(आदर जीव क्षमा गुण आदर-यह देशी)

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन,
बन्दन पूजन योग जी।
आसा पूरो चिन्ता चूरो,
आपो सुख आरोग जी ॥श्री०॥१॥
"संवर" राय "सिधारथ" राणी,
तेहनो आतम जातजी।
प्राण पियारो साहब सांचो,
तूही मातने तातजी। ॥श्री०॥२॥
कइयक सेव करें शंकर की,
कइयक भजें मुरार जी।

गणपति सूर्य उमा कइ सुमरें,
हूँ सुमरुं अविकारजी ॥श्री॥३॥

देव कृपा सूँ पामें लक्ष्मी,
सो इण भव को सुक्ख जी।

तो तूठॉ इन भव पर भवमें,
कदी न व्यापे दुःखजी ॥श्री०॥४॥

यद्यपि इन्द्र नन्रेद्र निवाजे,
तद्यपि करत निहालजी।

तू पुजनीक नरेन्द्र इन्द्रको,
दीन दयाल कृपाल जी ॥श्री०॥५॥

जय लग आवागमन न छूटे,
तव लग ए अरदासजी।

सम्पति सहित ज्ञान समकित गुण,
पाऊं दृढ़ विश्वासजी ॥श्री०॥६॥

अधम उधारन विरद तिहारो,
जोवो इण संसारजी।

लाज 'विनयचन्द'की अव तोने,
भवनिधिपार उतारजी ॥श्री०॥७॥

५-श्री सुमतिजिन-स्तवन

(श्रीसितल जिन साहिवाजी-यह देशी)

सुमति जिणेसर साहिबाजी,
"मेघरथ" नृप नो नंद ।
"सुमंगला" माता तणो जी,
तनय सदा सुखकंद ॥
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥१॥

सुमति सुमति दातार,
महा महिमानिलोजी ।
प्रणमूं बार हजार,
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥प्रभु०॥२॥

मधुकर नो मन मोहियोजी,
मालती कुसुम सुवास ।

त्यूँ मुज मन मोह्यो सही,
जिन महिमा सुविमास ॥प्रभु०॥३॥
ज्यूँ पङ्कज सूरजमुखीजी,
विकसै सूर्य प्रकाश ।
त्यूँ मुज मनड़ो गहगहै,
सुनि जिन चरित हुलास ॥प्रभु०॥४॥
पपह्यो पीउ-पीउ करेजी,
जान वर्षाऋतु मेह ।
त्यूँ मो मन निसदिन रहै,
जिन सुमरन सूँ नेह ॥प्रभु०॥५॥
काम भोगनी लालसाजी,
थिरता न धरे मन्न ।
पिण तुम भजन प्रतापथी,
दाझै दुरमति वन्न ॥प्रभु०॥६॥
भवनिधि पार उतारियेजी,
भक्त वच्छल भगवान ।

'विनयचन्दकी' वीनती,
थें मानो कृपानिधान ॥प्रभु०॥७॥

६-श्री पद्मप्रभजिन-स्तवन

(श्याम कैसे गज को फन्द छुड़ायो-यह देशी)

प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो ॥टेर॥

ढ धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ठ जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो ॥पद्म॥१॥

गौ ब्राह्मण प्रमदा बालककी,
मोटी हत्याचारो।
तेहनो करणहार प्रभु-भजने,
होत हत्यासूँ न्यारो ॥पद्म॥२॥

वेश्या चुगल छिनार जुवारी,
चोर महा बटमारो।

जो इत्यादि भजें प्रभु तोने,
तो निवृते संसारो ॥पद्म॥३॥
पाप पराल को पुंज बन्यो,
अति मानो मेरु अकारो ।
ते तुम नाम हुताशन सेती,
सहजे प्रज्ज्वलत सारो ॥पद्म॥४॥
परम धर्म को मरम महारस,
सो तुम नाम उच्चारो ।
या सम मंत्र नहीं कोइ दूजो,
त्रिभुवन मोहन गारो ॥पद्म॥५॥
तो सुमरण विन इण कलयुग में,
अवर न कोइ अधारो ।
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर,
दिन-दिन प्रीत वधारो ॥पद्म॥६॥
"सुषमा राणी" को अंगजात तू,
"श्रीधर" राय कुमारो ।

'विनयचन्द' कहे नाथ निरञ्जन,
जीवन प्राण हमारो ॥पद्म॥७॥

७-श्री सुपार्श्वजिन-स्तवन

(प्रभुजी दीनदयाल सेवक सरणे आयो-यह देशी)

जिनराज सुपार्श्व,
पूरो आस हमारी ॥टेर॥
" नरेश्वर को सुत,
"पृथ्वी" तुम महतारी ।
सनेही साहिब सांचो,
सेवक ने सुखकारी ॥श्रीजिन०॥१॥
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक,
मन वांछित सुख पूरो ।
बार-बार मुझ यही वीनती,
भव-भव चिंता चूरो ॥श्रीजिन०॥२॥
जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी,
कल्पवृक्ष सम जाणूं ।

पूरणब्रह्म प्रभु परमेश्वर,
भव-भव तुम्हें पिछाणूं ॥श्रीजिन०॥३॥
हूँ सेवक तू साहिब मेरो,
पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम-जनम जित-तिथ जाऊं तो,
पालो प्रीति पुरानी ॥श्रीजिन॥४॥
तारण-तरण सरण-असरण को,
विरद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत में,
इन्द्र नरेन्द्र न को है ॥श्रीजिन०॥५॥
स्वयंभु रमण बडो समुद्र में,
शैल सुमेर विराजे ।
तू ठाकुर त्रिभुवनमें मोटो,
भक्ति किया दुःख भाजे ॥श्रीजिन०॥६॥
अगम अगोचर तू अविनाशी,
अलख अखंड अरूपी ।

चाहत दरस 'विनयचंद, तेरो,
सच्चिदानंद स्वरूपो ॥श्रीजिन०॥७॥

८-श्री चन्द्रप्रभजिन-स्तवन

(चोकनी-देशी)

जय जय जगत शिरोमणी,
हूं सेवक ने तू धणी ।
अब तोसूं गाढ़ी बणी,
प्रभु आशा पूरो हमतणी ॥
मुझ म्हेर करो,
चन्द्र प्रभू जग जीवन अन्तरजामी ॥टेर॥
भव दुःख हरो,
सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी
॥मुझ०॥१॥
"चन्द्रपुरी" नगरी हती,
"महासेन" नामा नरपति ।

राणी "श्रीलखमा" सती,
तस नन्दन तू चढ़ती रती ॥मुझ०॥२॥
तू सरवज्ञ महाज्ञाता,
आतम अनुभव को दाता।
तो तूठां लहिये साता,
धन्य जगत मे तुम ध्याता ॥मुझ०॥३॥
शिव सुख प्रार्थना करसूँ,
उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूँ।
रसना तुम महिमा करसूँ,
प्रभु इण विध भवसागर तिरसूं ॥मुझ०॥४॥
चंद्र चकोरन के मन में,
गाज अवाज होवे घनमें।
पिय अभिलाषा ज्यों त्रियतनमें,
त्यों बसियो तू मो चितवनमें ॥मुझ०॥५॥
जो सुनजर साहिब तेरी,
तो मानो विनती मेरी।

फाटो फरम भरम मेरी,
प्रभु पुनरपि नहिं करूँ भव फेरी ॥मुझ०॥६॥
आतम-ज्ञान दशा जागी,
प्रभु तुम सेती लवलागी ।
अन्य देव भ्रमना भागी,
'विनयचंद' तिहारो अनुरागी ॥मुझ०॥७॥

९-श्री सुविधिजिन-स्तवन

(बुढापो वेरी आवियो हो-यह देशी)

"काकंदी" नगरी भली हो,
"श्रीसुग्रीव" नृपाल ।
"रामा" तस पटरागनी हो,
तस सुत परम कृपाल ॥
श्री सुविध जिणेसर वंदिये हो ॥टेर॥१॥
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो संजम भार ।

निज आतम अनुभवथकी हो,
पाम्या पद अविकार ॥श्री०॥२॥
अष्ट कर्म नो राजवी हो,
मोह प्रथम क्षय कीन ।
सुध समकित चारित्रनो हो,
परम क्षायक गुणलीन ॥श्री०॥३॥
ज्ञानावरणी दर्शणावरणी हो,
अन्तराय कियो अन्त ।
ज्ञान दरशन बल ये तिहूँ हो,
प्रकटया अनन्तानन्त ॥श्री०॥४॥
अव्याबाध सुख पामिया हो,
वेदनी करम खपाय ।
अवगाहना अटल लही हो,
आयु क्षय कर जिनराय ॥श्री०॥५॥
नाम करम नो क्षय करी हो,
अमूर्त्तिक कहाय ।

अगुरु लघुपणो अनुभव्यो हो,
गोत्र करम मुकाय ॥श्री०॥६॥
अष्ट गुणाकर ओलख्यो हो,
जोति रूप भगवंत ।
"विनयचंद" के उरबसो हो,
अहोनिश प्रभु पुष्पदंत ॥श्री०॥७॥

१०—श्री शीतलजिन-स्तवन

"श्रीदृढरथ" नृप तो पिता,
"नंदा" थारी माय ।
रोम-रोम प्रभु मो भणी,
सीतल नाम सुहाय ॥
जय जय जिन त्रिभुवन धणी ॥टेर॥१॥
करुणानिध करतार,
सेव्या सुरतरु जेहवो ।
वाँछित सुख दातार ॥जय॥२॥

प्राण पियारा तुम प्रभु,
पतिवरता पति जेम ।
लगन निरंतर लगरही,
दिन-दिन अधिको प्रेम ॥जय०॥३॥

शीतल चंदन नी परे,
जपता निस-दिन जाप ।
विषय कषाय थी ऊपनी,
मेटो भव-दुःख ताप ॥जय०॥४॥

आर्त्त रौद्र परिणाम थी,
उपजे चिन्ता अनेक ।
ते दुःख कापो मानसिक,
आपो अचल विवेक ॥जय०॥५॥

रोगादिक क्षुधा तृषा,
शस्त्र अशस्त्र प्रहार ।
सकल शरीरी दुःख हरो,
दिलसूं विरद विचार ॥जय०॥

सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु,
तू आसा बिसराम ।
"विनयचंद" कहे मो भणी,
दीजे मुक्ति मुकाम ॥जय०॥७॥

११-श्री श्रेयांशजिन-स्तवन

(राग-काफी-देसी-होरी नी)

श्रेयांश जिनन्द सुमररे ॥टेर॥

चेतन जाण कल्याण करन को,
आन मिल्यो अवसररे ।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभू गुण,
मन चंचल थिर कररे ॥श्रे०॥१॥

सास उसास बिलास भजन को,
दृढ विश्वास पकररे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच,
सो सुमरन जिनवररे ॥श्रे०॥२॥

कंद्रप क्रोध लोभ मद माया,
ये सबही परहररे ।
सम्यक्दृष्टि सहज सुख प्रगटे,
ज्ञान दशा अनुसररे ॥धे०॥३॥

झूठ प्रपंच जोबन तन धन अरु,
सजन सनेही घररे ।
छिनमें छोड़ चले पर भव को,
बांध सुभासुभ थररे ॥धे०॥४॥

मानस जनम पदारथ जाको,
आसा करत अमररे ।
ते पूरब सुकृत कर पायो,
धरम-मरम दिल धररे ॥धे०॥५॥

'बिदसैन" "चिस्नाराणी" को,
नंदन तू न बिसररे ।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या,
मुक्ति पंथ पग भररे

तू अविकार विचार आतम गुन,
भव-जंजाल न पर?रे ।
पुद्गल चाह मिटाय 'विनयचन्द',
ते जिन तू न अवररे ॥श्रे०॥७॥

१२–श्रीवासुपूज्यजिन–स्तवन

(तेरी फूलसी देह पलकमें पलटे-यह देशी)

प्रणमूँ वासुपूज्य जिन नायक,
सदा सहायक तू मेरो ।
बिषम वाट घाट भयथानक,
परमस्रिरे सरनो तेरो ॥प्रणमू०॥१॥
खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण,
जो चौ तरफ दिये घेरो ।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी,
अरियन होव प्रगटे चेरो ॥प्र०॥२॥
विकट पहार उजार बीच कोइ,
चोर कुपात्र करे हेरो ।

तिण बिरियां करिया तो सुमरण,
कोई न छीन सके डेरो ||प्र०||३||
राजा बादशाह जो कोइ कोपे,
अति तकरार करे छेरो ।
तदपि तू अनुकूल होय तो,
छिन में छूट जाय सब केरो ||प्र०||४||
राक्षस भूत पिशाच डाकिनी,
साकनी भय न आवे नेरो ।
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे,
प्रभु तुम नाम भज्यां गहरो ||प्र०||५||
विस्फोटक कुष्टादिक संकट,
रोग असाध्य मिटे सगरो ।
विष प्यालो अमृत होय प्रगमें.
जो विश्वास जिनंद केरो ||प्र०||
मात 'जया' 'वसु' नृप के नन्दन,
तत्व जथारथ बुध प्रेरो।

वे कर जोरि 'विनयचंद' विनवे,
वेग मिटे मुझ भव फेरो ॥प्र०॥७॥

१३-विमलनाथजिन-स्तवन

(अहो शिवपुर नगर सुहामणो-यह देशी)

विमल जिनेश्वर सेविये,
थारी बुध निर्मल हो जायरे जीवा।
विषय-विकार बिसार ने,
तू मोहनी करम खपाय रे।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥१॥

सूक्ष्म साधारण पणे,
परतेक बनस्पती मांयरे, जीवा।
छेदन भेदन तेंसही
मर-मर उपज्यो तिण कायरे ॥जी०॥२॥

काल अनंत तिहांभस्यो,
तेहना दुःख आगमथी संभालरे जीवा।

' ॥प्र०॥ -स्तवन देशी) ार्य रे जीवा। रे। सेविये ॥१॥ ेवा। ॥जी०॥ ,रे जीवा

पृथ्वी अप तेउ वायु में,
रह्यो असंख्य असंख्य कालरे ॥जी०॥३॥
एकेन्द्री सू बेन्द्री थयो
पुन्याइ अनंती वृद्धिरे, जीवा।
सर्भापचेन्द्री लग पुन्यबध्या,
अनंतानंत प्रसिद्ध रे ॥जी०॥४॥
देव नरक तिरयंच मे,
अथवा मानव भवबीचरे, जीवा।
दीन पणे दुःख भोगव्या,
इण चारों ही गति बीचरे ॥जी०॥५॥
भवके उत्तम कुल मिल्यो,
भेट्या उत्तम गुरु साधरे, जीवा।
सुण जिन वचन सनेह से,
समकित व्रत शुद्ध आराधरे ॥जी०॥६॥
पृथ्वीपति 'कृतभानु' को,
'श्यामाराणी' को कुमाररे जीवा

"विनयचंद" कहे ते प्रभु,
सिर सेहरो हिवड़ारो हाररे ॥जी०॥७॥

१४-श्रीअनन्तजिन-स्तवन

(वेगा पधारोरे महेलथी-यह देशी)

अनंत जिनेश्वर नित नमूं,
अद्भुत जोत अलेख।
ना कहिये ना देखिये,
जाके रूप न रेख ॥अनंत॥१॥

सूक्षम थी सूक्षम प्रभू,
चिदानंद चिद्रूप।
पवन शब्द आकाशथी,
सूक्षम ज्ञान सरूप ॥अनंत॥२॥

सकल पदारथ चिन्तवूं,
जे-जे सूक्षम होय।
तिणथी तू सूक्षम महा,
तो सम अवरन कोय ॥अनंत॥३॥

कवि पंडित कही-कही थके,
आगम अर्थ विचार।
तो पण तुम अनुभव तिको,
न सके रसना उचार ॥अनंत॥४॥

आपभणे मुख सरस्वती,
देयी आपो आप।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता,
अलख अजप्पा जाप ॥अनंत॥५॥

मन बुध पाणी तो विषे।
पहुंचे नहीं लगार।
साखी लोकालोकनो,
निर्विकल्प निर्विकार ॥अनंत॥६॥

मा 'सुजसा' 'सिहरथ' पिता,
तस सुत 'अनंत' जिनंद।
"विनयचंद" अब ओलख्यो,
साहिब सहजानन्द ॥अनंत

१५–धर्मजिन–स्तवन

(आज नहेजोरे दोसै नाहलो–यह देशी)

धरम जिनेश्वर मुझ हिवडे वसो,
प्यारो प्राण समान।
कबहूँ न विसरूं हो चितारूं नहीं,
सदा अखंडित ध्यान ॥ध०॥१
ज्यूं पनिहारी कुम्भ न वीसरे,
नटवो नृत्य निदान।
पलक न विसरे हो पदमनि पियुभणी,
चकवी न विसरे भान ॥ध०॥२
ज्यूं लोभी मन धनकी लालसा,
भोगी के मन भोग।
रोगी के मन माने औषधी,
जोगी के मन जोग ॥ध०॥३
इण पर लागी हो पूरण प्रीतड़ी,
जाव जीव परियंत।

भव-भव चाहूँ हो न पड़े आंतरो,

तवन भव भंजन भगवंत ॥घ०॥३॥

लो-यह देगी) काम-क्रोध मद मत्सर लोभयो,

वसो, कपटी कुटिल कठोर।

इत्यादिक अवगुण कर हूं भर्यो,

नहीं, उदय कर्मके जोर ॥घ०॥४॥

॥घ०॥ तेज प्रताप तुमारो प्रगटे,

मुझ हिवड़ा में आर।

पुभणो, तो हूं आतम निज गुण संभालने,

॥घ०॥२ अनंत बली कहिवाय ॥घ०॥५॥

'भानू' नृप 'सुव्रता' जननी तणो,

अंगजात अभिराम।

॥घ०॥ 'विनयचंद' ने वल्लभ तू प्रभु,

शुध चेतन गुण धाम ॥घ०॥६॥

१६–श्री शांतिजिन–स्तवन

(प्रभुजी पधारो हो नगरी हमतणी–यह देशी)

"विश्वसेन" नृप "अचला" पटरानी,
तस सुत कुल सिणगार हो सौभागी।
जनमत शान्ति करी निज देसमें,
मरी मार निवार हो सौभागी।
शान्ति जिनेश्वर साहिब सोलमां ॥१॥
शान्तिदायक तुम नाम हो सौभागी।
तन मन बचन सुध कर ध्यावतां,
पूरे सघली आस हो सौभागी ॥२॥
विघन न व्यापे तुम सुमरन कियां।
नासे दारिद्र दुःख हो सौभागी.
अष्ट सिद्धि नव निद्धि पग पग मिले,
प्रगटे सगला सुख हो, सौभागी ॥३॥
जेहने सहायक शान्ति जिनंद तू,
तेहने कमीय न काय हो, सौभागी ॥४॥

जे जे कारज मन में तेवड़े,
ते-ते सफला थाय हो, सौभागी ॥४॥
दूर दिसावर देश प्रदेश में,
भटके भोला लोग हो, सौभागी ॥
सानिधकारी सुमरन आपरो,
सहज मिटे सहू सोक हो, सौभागी ॥५॥
आगम-सास्त्र सुणो छे एहवी,
जे जिण-सेवक होय हो, सौभागी ॥
तेहनी आशा पूरे देवता ।
चौसठ इन्द्रादिक सोय हो, सौभागी ॥६॥
भव-भव अन्तरयामी तुम प्रभू,
हमने छे आधार हो, सौभागी ॥
कर जोड़ "विनयचंद" विनवे,
आपो सुख थी कार हो, सौभागी ॥७॥

१७-श्री कुन्थुजिन-स्तवन

(रेखता)

कुंथु जिनराज तू ऐसो,
नहीं कोइ देव तो जैसो ।
त्रिलोकी नाथ तू कहिये,
हमारी बांह दृढ गहिये ॥कुंथु०॥१॥

भवोदधि डूबतो तारो,
कृपानिधि आसरो थारो ।
भरोसा आपका भारी,
विचारो विरुद उपकारी ॥कुंथु०॥२॥

उमाहो मिलन को तोसे,
न राखो आंतरो मोसे ।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी,
तैसी चैतन्यता मेरी ॥कुंथु०॥३॥

करम-भ्रम जाल को दपट्यो,
विषय सुख ममत में लपट्यो ।

भम्यो हूं चहुं गती माहीं,
उदयकर्म भ्रम की छांहीं ॥कुंथु०॥४॥

उदय को जोर है जौलों,
न छूटे विषय सुख तौलों।
कृपा गुरुदेव की पाई,
निजातम भावना भाई ॥कुंथु०॥५॥

सहज अनुभूति उरजागी,
सुरत निज रूप में लागी।
तुम्हीं हम एकता जाणूं—,
द्वैत भ्रम-कल्पना मानूं ॥कुंथु०॥६॥

"श्रीदेवी" 'सूर' नृप नन्दा,
अहो सरवज्ञ सुख कन्दा।
"विनयचन्द" लीन तुम गुन में,
न व्यापे अविद्या मन में ॥कुंथु०॥७॥

१८-श्री अरहनाथ जिन-स्तवन

(अलगी गिरनारी-वह देशी)

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी ॥साहब सीधो ॥१॥

चेतन भज तू अरह नाथने,
ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता,
तेहनो पुत्र कहाय ॥साहिब सीधो०॥२॥

क्रोड़ जतन करतां नहीं पामें,
एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करी ने लहिये,
मुक्ति अमोलक ठाम ॥सा०॥३॥

समकित सहित कियां जिन भगती,
ज्ञानदरसन चारित्र।
तप वीरज उपयोग तिहारा,
प्रगटे परम पवित्र ॥सा०॥४॥

मां नी कूंख कदरा
माँही उपना अवतारी ।
मालती कुसुम-मालीनी वांछा
जननी उरधारी ॥म०॥१॥

तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो,
त्रिभुवन प्रिय कारी ।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी,
वेद धरयो नारी ॥म०॥२॥

परणन काज जान सज आए,
भूपति छः भारी ।
मिथिला पुर घेरी चौतरफा,
सेना विस्तारी ॥म०॥३॥

राजा "कुम्भ" प्रकाशी तुमपे,
बीती विधि सारी ।
छहुं नृप जान सजी तो परणन,
आया अहंकारी ॥म०॥४॥

महा असार उदारिक देही,
पुतली इव प्यारी।
संग किया भटके भव-दुःख में,
नारि नरक-वारी ॥म०॥९॥

भूपति छः प्रतिबोध मुनि हो,
सिद्धगति संभारी।
"विनयचंद" चाहत भव-भव में,
भक्ति प्रभू थारी ॥म०॥१०॥

२०-श्री मुनिसुव्रतजिन-स्तवन

(चेतरे चेतरे मानवी-यह देशी)

श्री मुनिसुव्रत साहिबा,
दीनदयाल देवाँ तणा देव के।
तारण तरण प्रभु मो भणी,
उज्ज्वल चित्त सुमरूं नितमेवके ॥श्री०॥१
हूँ अपराधी अनादि को,
जनम-जनम गुना किया भरपूर के।

न्द्रिया प्राण छः कायना,
सेविया पाप अठार करूरके। ॥श्री०२॥
एवं अशुभ कर्तव्यता,
तेहने प्रभू तुम न विचारके।
अधम उधारण विरुद छे,
सरण आयो अब कीजिये सारके ॥श्री०३॥
किंचित पुन्य परभावथी,
इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्मके।
निकलूं नरक निगोदथी,
पायो अनुग्रह करो परिब्रह्मके ॥श्री०४॥
साधुपणो नहिं संग्रह्यो,
श्रावक व्रत न किया अंगीकारके।
आदर्या तो न आराधिया,
तेहथी रुलियो हूं अनंत संसारके ॥श्री०५॥
एह समकित व्रत आदर्यो,
तेहने आराधी उतरूं भवपारके।

जनम जीतव सफलो हुवे,
इण पर विनवू बार हजारके ॥श्री०६॥
"सुमति" नराधिप तुम पिता,
धन धन श्री "पदमावती" मायके।
तस सुत त्रिभुवन तिलक तू,
बंदत "विनयचद" सीस नवाय के ॥श्री०७॥

२१–श्री नमिजिन–स्तवन

(सुणियोरे बाला कुटिल मंजारी तोता ले गइ–यह देशी)

सुज्ञानी जीवा भजलो जिन इकवीसवाँ
"विजयसेन" नृप "विप्राराणी",
नमीनाथ जिन जायो ।
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव,
सुर नर आनंद पायारे ॥सु०॥१॥
भजन किया भव-भवना दुष्कृत,
दुःख दुर्भाग्य मिट जावे ।
काम, क्रोध, मद मत्सर तृष्णा,
दुर्मत्ति निकट न आवेरे ॥सु०॥२॥

जीवादिक नव तत्व हिये धर,
हेय ज्ञेय समझीजे ।
तीजो उपादेय ओलखने,
समकित निरमल कीजेरे ॥सु०॥३॥

जीव अजीव बंध, ये तीनों,
ज्ञेय जथारथ जानो ।
पुन्य पाप आस्रव परिहरिये,
हेय पदारथ मानो रे ॥सु०॥४॥

संवर मोक्ष निर्जरा निज गुण,
उपादेय आदरिये ।
कारण कारज जाण भली विध,
भिन-भिन निरणोकरियेरे ॥सु०॥५॥

तू सो प्रभू प्रभू सो तू है,
द्वैत कल्पना मेटो ।
सत्चित आनंदरूप 'विनयचंद'
परमातम पद भेंटोरे ॥सु०॥६॥

२२–श्री नेमिजिन–स्तवन.

(नगरी खुब वर्णी छे जी--यह देशी)

श्रीजिनमोहन गारो छे,
जीवन प्राण हमारो छे।
"समुद्रविजय" सुत श्री नेमीश्वर,
जादव कुल को टीको।
रत्न कुक्ष धारिणी "शिवादे",
तेहनो नंदन नीको ॥श्री०॥१॥

सुन पुकार पशु की करुणा कर,
जानि जगत् सुख फीको।
नव भव नेह तज्यो जोबन में,
उग्रसेन नृप धी को ॥श्री०॥२॥

सहस पुरुष संग संजम लीधो,
प्रभुजी पर उपकारी।
धन-धन नेम राजुलकी जोड़ी,
महा बालब्रह्मचारी ॥श्री०३॥

बोधानंद सरूपानंद में,
चित एकाग्र लगायो ।
आतम-अनुभव दशा अभ्यासी,
शुक्लध्यान जिनध्यायो ॥श्री०॥४॥

पूर्णानंद केवलो प्रगटे,
परमानंद पद पायो ।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर,
सहजानंद समायो ॥श्री०॥५॥

नित्यानंद निराश्रय निश्चल,
निर्विकार निर्वाणी ।
निरांतक निरलेप निरामय,
निराकार वरनाणी ॥श्री०॥६॥

एवो ज्ञान समाधि संयुत,
श्री नेमिश्वर स्वामी ।
पूरण कृपा "विनयचंद" प्रभु की,
अब तो ओलख पामी ॥श्री०॥७।

२३-श्री पार्श्वजिन-स्तवन

(जीवरे शीयल तणो कर संग-यह देशी)

जीवरे तू पार्श्व जीनेश्वर वन्द ॥ टेर ॥

"अश्वसेन" नृप कुल तिलोरे,
"बामा दे" नो नंद ।
चिंतामणि चित में बसेरे,
दूर टले दुःख द्वंद ॥जीवरे०॥१॥

जड़ चेतन मिश्रित पणेरे,
करम सुभासुभ थाय ।
ते विभ्रम जग कल्पनारे,
आतम अनुभव न्याय ॥जीवरे०॥२॥

वेहमी भय माने जथारे,
सूने घर वैताल ॥
ज्यूँ मूरख आतम विषेरे,
मान्यो जग भ्रम जाल ॥जीवरे०॥३॥

सर्प अंधारे रासड़ीरे,
रूपो सीप मझार ।

मृगतृष्णा अंबू मृषारे,
त्यूँ आतम में संसार ॥जीवरे॥४॥

अग्नि विषे ज्यूँ मणि नहीं रे,
मणि में अग्नि न होय ।
सपने की संपति नहीं,
ज्यूँ आतम में जग जोय ॥जीवरे॥५॥

बांझ पुत्र जनमे नहीं रे,
सींग शशै सिर नाय ।
कुसुम न लागे व्योम मेंरे,
त्यूँ जग आतम मांय ॥जीवरे०॥६॥

अमर अजोनी आतमारे,
है निश्चे तिहुं काल ।
"विनयचंद" अनुभव थकीरे,
तू निज रूप सम्हाल ॥जीवरे०॥७॥

२४–श्री महावीरजिन–स्तवन

(श्री नवकार जपो मन रंगे-यह देशी)

श्री महावीर नमो वरनाणी,
शासन जेह्नो जाणरे प्राणी ।
धन धन जनक 'सिद्धरथ' राजा
धन 'त्रसलादे' मातरे प्राणी ॥श्री०॥१॥

ज्याँ सुत जायो गोद खिलायो,
'वर्धमान' विख्यातरे प्राणी ।
प्रवचन सार विचार हिया मे,
कीजे अरथ प्रमाणरे प्राणी ॥श्री०॥२॥

सूत्र विनय आचार तपस्या,
चार प्रकार समाधरे प्राणी ।
ते करिये भवसागर तरिये,
आतम भाव अराधरे प्राणी ॥श्री०॥३॥

ज्यों कंचन तिहु काल कहीजे,
भूषण नाम अनेकरे प्राणी ।

त्यों जगजीव चराचर जोनी,
हि चेतन गुण एकरे प्राणी ॥श्री०॥४॥

अपनो आप विषै थिर आतम,
सोहं हंस कहायरे प्राणी।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय,
पुद्‌गल भरम मिटायरे प्राणी ॥श्री०॥५॥
शब्द रूप रस गंध न जामें,
नास परस तप छांहरे प्राणी।
तिमर उद्योत प्रभा कछु नाहीं,
आतम अनुभव मांहिरे प्राणी ॥श्री०॥६॥
सुख दुःख जीवन मरन अवस्था,
ए दस प्राण संगातरे प्राणी।
इनथी भिन्न 'विनयचन्द' रहिये,
ज्यों जलमें जलजातरे प्राणी ॥श्री०॥७॥

॥ कलश ॥

चौवीस तीरथ नाथ कीरति,
गावतां मन गहगहे।

कुमट 'गोकुलचन्द' नन्दन,
'विनयचन्द' ईणपर कहे ॥
उपदेश 'पूज्य हमीर मुनिको'
तत्व निज उरमें धरो ॥
उगणीस सौ छः के छमच्छर,
महास्तुति पूरण करी ॥

(भजन)

मानव तन को पायी
हो हो करणी करलो ॥टेर॥
लक्ष चौरासी में भटकत आया,
चिंतामणि सम नरतन पाया,
इसको सार्थक करलो
हो हो करणी करलो ॥मा०॥१॥
दुर्व्यसनों में व्यर्थ हि फंसकर,
प्राप्त समय को यों ही गमाकर,

पुण्य कलश मत ढोलो
हो हो करणी० ॥मा०॥२॥

कौन हूँ मैं और कहाँ से आया,
अपने संग में क्या क्या लाया;
ऐसा विचार जरा करलो
हो हो करणी० ॥म०॥३॥

सब स्वार्थ की ही है माया,
इस में दिलको क्यों उलझाया;
जिन चरणन मन धरलो
हो हो करणी० ॥मा०॥४॥

'श्रेयस्कर' की यह ही कामना,
अपना करतव पालन करना,
पाप कर्म सब टालो
हो हो करणी० ॥मा०॥५॥

(भजन)

मनवा कह्योना करे।
प्रभु पद पद्म में प्रेम न राखे,
अघ मग फिरत फिरे ॥टेर॥
सब अनरथ को मूल विषय है,
जानत ताहि परे;
मूढ़ भूड सम विषय कीच में,
फसकर के है मरे ॥म०॥१॥
संयम अमृत रस नहीं चाखे,
विषय विष पान करे,
प्रेम सहित सद्गुरु समझावें,
तोय न समझ परे ॥म०॥२॥
श्री जिनवाणी अति सुखदेनी
श्रवण न नित्य करे;
पूरण सद्गुरु योग मिल्यो है,
भटकत है कित रे. ॥म०॥३॥

भटकत-भटकत खोय दियो,
सब दुःख हि संचिधरे
संयम मंदिर में जो डोलो,
दुःख मिटे सगरे. ॥म०॥४॥

गुरु पद पद्म में मन मधुकर,
यों हर्ष सहित विचरे,
'श्रेयस्थर' समता सुगंध से,
बनकर मस्त फिरे ॥म०॥५॥

(भजन)

विनय सुनो जिनराज
हमारी विनय सुनो ॥टेर॥
भम्यो निरंतर भव बंधन में,
झूठे जग के संबंधन में;
जरयो क्रोध आदिक इंधन में,
अब राखो मम लाज ॥हमा०॥१॥

काम अनारज मैंने कीना,
हूँ अजान सबहि विध हीना,
दीजै अभय जानि जन दीना,
दीन दयालु महाराज ॥हमा०॥२॥

सुख दुःख रोग वियोग सहूँगा,
प्रीति सुधारस नित्य पिऊंगा,
इन्द्रिय मन को वश में करूँगा,
जिससे सुधरे काज ॥हमा०॥३॥

शरण त्याग मैं नहिं विचरूँगा,
प्रेम सहित तव नाम जपूंगा,
तव अनुशासन शीष धरूँगा,
आप मेरे शिरताज ॥हमा०॥४॥

चरण कमल में प्रीति रहेगी,
जगकी तनिक न भीति रहेगी;
'श्रेयस्कर' की नीति रहेगी,
ज्ञान चरण अनुराग ॥हमा०॥५॥

(तर्ज- पूजारी मोरे मदिर में आओ)

जिनेश्वर! मन मन्दिर में आओ,
डूबत है नैया यह मेरी,
भव सागर मे, बचाओ ॥जिनेश्वर०॥टेर॥

नीर अपार न तीर दिसे है,
कुछ तो धैर्य बंधाओ।
मोह भंवर मे नैया पड़गई,
अबतो पार लगाओ. ॥जिनेश्वर०॥१॥

दीन दयालु विरुद तिहारो,
सो तो ध्यान में लाओ।
डूबे चाहे नैया मेरी,
अपना विरुद बचाओ ॥ जिनेश्वर०॥२॥

नाथ अनाथ के तुम हो स्वामी,
मोसो अनाथ बताओ।
'श्रेयस्कर' को पूर्ण भरोसो,
आओ प्रभु तुम आओ ॥ जिनेश्व०॥३॥

(तर्ज–मैं वनकी चिडिया वनके बनवन डोलूँ रे)

मैं रात दिवस निज मुख से,
जिन गुण गाऊं रे
मैं निर्मल मन मंदिर मे,
उनको बिठाऊं रे ॥टेर॥

मैं जग से नाता तोड़ूं,
जिनवर से प्रीती जोड़ूं.
रागद्वेष और मोह जनित,
सब सुख से मुखडा मोड़ू
नित गुण गाऊं रे ॥मैं०॥१॥

चाहे घोर बिपत्ति आवे,
अथवा कोई ललचावे,
ध्येय से अपने मुझे न कोई,
कभी डिगाने पावे,
'श्रेय' ही ध्याऊं रे ॥मैं०॥२॥

(तर्ज–रसिया बधावो भैया)

आओ अहिंसा देवी दर्शन देवो हो ॥टेर०॥

हिंसा ने राज्य जमाया,
जग मे ताण्डव फैलाया।
चहुं और दुःख ही छाया,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥१॥

हो तुम्ही जगत की माता,
देती सब को सुख साता।
तुम ही से हिन्द सुहाता,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥२॥

सब ही तेरे गुण गावें,
न्योछावर हो हो जावें।
'श्रेयस्कर' को यह भावे,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥३॥

(तर्ज–जाओ–जाओ अय मेरे साधु रहो गुरु के

आओ आओ अय शान्ति प्रभुजी
शान्ती के दातार

आते ही माता के गर्भ में
दूर किया जग रोग।
शान्ति शान्ति की थी सब भू पर
हर्षे थे सब लोग ॥आओ०॥१॥
जैसे रक्षा की कपोत की
कर सब दुःख का नाश।
त्रिविध दुःखमें मैं तो फँसा हूँ
एक तुम्हारी आश ॥आओ०॥२॥
भटकत आया दशों दिशा में
मिला न तुमसा नाथ।
आया शरण मे है 'श्रेयस्कर'
पकडो मेरा हाथ ॥आओ०॥३॥

(भजन)

जैन दुनिया को अब हम जगा जायंगे।
वीर स्वामी का संदेश सुना जायगे ॥टेर॥
बनके पूर्ण अहिंसा से बलवान हम,
लेके सत्याग्रह की हाथ तलवार हम,
धर्म विध्वंसियों को हरा जायंगे ॥जैन०॥१॥

जो वाधक हैं उन्नति में कुरूढ़ियां,
नष्ट करके वना देंगे सुरीतियां.
मार्ग जैनत्व का हम दिखा जायंगे ॥जैन॥२॥
जो हैं भाई हमारे से विछड़े हुवे,
शुद्ध करके उन्हे फिर मिलाते हुवे,
जैन जनता की संख्या वढ़ा जायंगे ॥जैन॥३॥
धर्म देश समाज की रक्षा करें,
विघ्नसंतोषि आकर जो विघ्न करें,
प्राण देकर के उनको हटा जायंगे ॥जैन॥४॥
भावना यह हमारी सदा ही रहे,
विश्व प्रेम वढ़ाकर सुखी सव रहें,
इस प्रणको 'श्रेयस्कर' निभा जायंगे ॥जैन॥५॥

(तर्ज-वातें सुनलो सावरिया हमारी रे)
विन्ती सुनलो प्रभुजी हमारी रे ॥टेर॥
जवसे स्वरूप ध्यानमें आया है तुम्हारा-
तव ही से हमें ज्ञात हुवा रूप हमारा.
समझो समता है मेरी तिहारी रे ॥विन्ती॥१॥

पैदा हो मेरे ही में मुझे खूब फंसाया-
इन राग द्वेष मोहने हमको है सताया,
वैठो तृष्णा भी जाल पसारी रे ॥विन्ती॥२॥

फंसकर के इनके जालमें मैं दीन वनगया-
सव धर्म धन को खोदिया मैं हीन वनगया,
प्रभो ऐसा हुवा मैं अनारी रे ॥विन्ती॥३॥

तुम दीन के दयालु हो अनाथ नाथ हो-
है प्रार्थना यही कि 'श्रेयस्कर' सनाथ हो,
इक आशा लगी है तुम्हारी रे ॥विन्ती॥४॥

(तर्ज-तुम्हीने मुझको प्रेम सिखाया)

वीर प्रभुने धर्म सिखाया,
मोह नींद से सब को जगाया ॥टेर०॥
शुद्ध अहिंसा पाठ पढाया,
स्याद्वादामृत पान कराया,
तार्थ के स्थापनहार जिनजी. वीर० ॥१॥

मेघ कुंवर आदिक मुनि तारे,
अर्जुनमाली से सुद्धारे,
कौशिक के तारन हार जिनजी. वीर० ॥२॥

चंदनबाला के दुःख निवारे,
अबतो 'श्रेयस्कर' है द्वारे,
आपही का आधार जिनजी. वीर० ॥३॥

(तर्जः—लाखों सलाम)

श्री ऋषभदेव भगवान
तुमको लाखों प्रणाम
श्री आदिनाथ जिनराज
तुमको लाखों प्रणाम ॥टेर॥

भोगभूमि को कर्मभूमि कर
पुरुषारथ की शक्ति बताकर
उद्यमरत जीवों को बनाकर
सब दुःख भंजनहारी ॥तुम०

सिखा पुरुष को कला बहत्तर
चौंसठ कला युक्त नारी कर
नीतिधर्म की राह दिखाकर
बनगये जग हितकारी ॥तुम०॥२॥

कर्म धर्म अनुसार तुम्हीने
चारवर्ण संस्थापित कीने
यथायोग्य सब कारज दीने
राजनीति निर्धारी ॥तुम०॥३॥

आलस प्रमाद रिपु को मारा
पुरुषारथ व्रत तुमने धारा
फिर सारा संसार सुधारा
हुए जगत दुःखहारी ॥तुम०॥४॥

शुद्ध संयमी प्रभुजी बनकर
हुए केवली अरु तीर्थंकर
शरण में आया है 'श्रेयस्कर'
चरणन की बलिहारी ॥तुम०॥५॥

(तर्जः—लाखों सलाम)

श्री महावीर भगवान
तुम को लाखों प्रणाम
श्री वर्द्धमान जिनराज
तुम को लाखों प्रणाम ॥टेर०॥

तत्व अहिंसा का बतलाया
विश्वप्रेम का पाठ पढाया
हिंसा पाप को मार भगाया
जैनधर्म उद्धारी ॥तुम०॥१॥

मात पिताकी भक्ति सिखाकर
भ्रातृ प्रेम का पाठ पढाकर
नीचजनों को उच्च बनाकर
जग समता विस्तारी ॥तुम०॥२॥

स्याद्वाद सिद्धान्त बताया
मिथ्यामत पाखण्ड हटाया
शुद्ध मार्ग ऐसा बतलाया
मिले मोक्ष सुखकारी ॥तुम०॥३॥

राजपाट सुख सम्पति तजकर
चार सहस संग संयम लेकर
तप में अपना जीवन देकर
तीर्थंकर पद धारी ॥तुम०॥४॥

'श्रेयस्कर' का है यह कहना
वर्द्धमान शिक्षा सिर धरना
जीवन को संयम मय करना
मिले मुक्ति सुखकारी ॥तुम०॥५॥

जैन-प्रकाश पुस्तक माला पुष्प — १

अनुकम्पा-विचार

जिसे

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य

श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी

महाराज ने भोले-जीवों के लाभार्थ रचा।

संग्रहकार —

पं० भवानीशंकर दीक्षित।

प्रकाशक —

मानमल सुराणा

नयावास, ब्यावर (राजपूताना)

प्रथम बार ५००० | वीर सं० २४५६ विक्रम सं० १९८७ | मूल्य

प्रकाशक—

मानमल सुराणा
नयावास
ब्यावर (राजपुताना)

स्थली-प्रदेश में पुस्तक मिलने का पता—
श्री० छोटेलालजी यति,
मु० सुजानगढ़
जिला बीकानेर

मुद्रक
११ फार्म सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर २०१-८-३०
१ फार्म (भूमिकादि) डायमण्ड जु० प्रेस, अजमेर।

प्राक्कथन

हमारे कई एक जैन नामधारी भाइयों ने अपने उल्टे सिद्धान्तों द्वारा दया-दानादि जैन-धर्म के मूल-तत्वों का जिस निर्दयतापूर्वक विरोध किया है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है, कि भगवान-महावीर के पवित्र सिद्धान्तों की इन निर्दय-सिद्धान्तों से रक्षा करना प्रत्येक धर्म-प्राण जैनधर्मावलम्बी का कर्त्तव्य होगया है। मारवाड़-मेवाड़ की लगभग ६० हजार जनता, आज तर्क-वितर्क और शास्त्रीय-ज्ञान से शून्य होकर, इस प्रकार के शास्त्रविरुद्ध-सि

को आँख मूँदकर मानती है। ऐसी जनता, प्राय. शिक्षित नहीं है, बल्कि अन्धविश्वासी-है। या, यों कह सकते हैं, कि वह मारवाड़ी-भाषा में बनीहुई ढालों के जाल में फँसी हुई तड़फड़ा रही है, उद्धार का साधन तर्क-वितर्क करने या शास्त्र देखने की उसे मुमानियत है। उसके, धार्मिक-ज्ञान की वृद्धि का केवल एक ही साधन बाक़ी रह गया है, और वह है—अनुकम्पादि विषयों की ढालें। इन ढालों में, जैन-धर्म के सिद्धान्तों का रूप जैसा विकृत कर दिया गया है, उसे देखकर दु ख होता है। जो अनुकम्पा, जैनधर्म का प्राण है, उसे सावद्य (पापपूर्ण) कहकर ऐसे लोगों ने धर्म को अधर्म की शक्ल दे दी है।

इन सारी बातों को दृष्टि में रखकर, बाइस के आचार्य श्री १००८ पूज्य श्री जवा-

हिरलालजी महाराज ने यह आवश्यक समझा, कि इन लोगों की जैन-धर्म विरुद्ध ढालो का उत्तर उसी प्रकार की ढाले बनाकर दिया जावे, जिससे अशिक्षित तथा अर्द्ध-शिक्षित लोगो की समझ में 'सत्य' शीघ्र आसके। पूज्यश्री ने उन ढालों के उत्तर मे शास्त्रीय-प्रमाणयुक्त ढालों की रचना की और व्याख्यान के समय आप उन्हे फरमाने भी लगे। इन ढालों का जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इनकी उपयोगिता देखकर, हमारे जी मे यह लालच उत्पन्न हुआ, कि यदि ये ढालें छपकर प्रकाशित होजावें, तो जन साधारण का अत्यधिक कल्याण हो। अतः पूज्यश्री से धारणा कर-करके ये ढालें लिखाई गईं और सब का संग्रह हो जाने पर हमने अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत किया।

पूज्यश्री ने, मारवाड मे न तो जन्म ही ग्रहण किया है, न उनकी शिक्षा-दीक्षा ही मारवाड़ मे हुई है। जन्म से लगाकर दीक्षा तथा इसके पश्चात का श्रीमानजी का अधिकांश समय मारवाड़ से वाहर ही वीता है। यही कारण है, कि श्रीजी की भाषा मारवाडी नही है। फिर भी, अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण, आपने थोड़े ही दिनो के भीतर, मारवाड़ी भाषा में बहुत कुछ गति प्राप्त करली है। यदि, इन ढालों को इस मारवाड़ी-भाषा मे न वनाया जाता और खड़ी बोली मे बनाया जाता, तो जिस लाभ को दृष्टि मे रखकर इनका निर्माण किया गया है, उस लाभ से यदि सर्वथा नहीं, तो बहुत अंश में जनता को वंचित रहना पड़ता। क्योंकि प्रत्येक-प्राणी, अपनी मातृभाषा मे—चाहे वह टूटी-फूटी या अशुद्ध ही क्यो न

हो— जितना शीघ्र और अच्छी तरह समझ सकता है, उतना शीघ्र और अच्छी तरह दूसरी भाषा में नहीं समझ सकता। इसलिये पूज्यश्री ने इन ढालों को, उसी भाषा में, उसी तर्ज़ पर और वैसे ही उदाहरण देकर रचना उचित समझा, जैसी भाषा, तर्ज़ और जैसे उदाहरणादि उन ढालों में हैं, जिनका निर्माण अनुकम्पा और दान को पाप बताने के लिये हुआ है। इन ढालो में, पूज्यश्री ने भाषा और कविता पर उतना ध्यान नहीं दिया है, जितना ध्यान ऐसी जनता के हृदय-पट पर अङ्कित जीवरक्षा और दान के विरुद्ध बने हुए दुर्भाव मिटाने पर दिया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा पूज्यश्री की कवित्व-शक्ति का परिचय देना हमारा अभिप्राय नहीं है, न पूज्यश्री ने इस उद्देश से इन

ढालो की रचना ही की है। अपितु इस ग्रन्थ की रचना और प्रकाशन से यह अभीष्ट है, कि हमारे जिन भोले-भाले भाइयों को, अज्ञान के भयङ्कर-अँधेरे में डाल रखा गया है, उन्हे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो और वे जैन-धर्म के रहस्य को समझकर, उस ढालरूपी जाल के बन्धन से निकल सके, जिसमे कि अबतक फँसे हुए हैं। अतः पाठक-महोदय, इस पुस्तक को कविता की दृष्टि से न देखकर, भाव की दृष्टि से देखने की कृपा करें और अनुकम्पा-दान को उठाने के लिये ढालों द्वारा जो प्रयत्न किया गया था, उसके सयुक्तिक-खण्डन पर शान्ति और गम्भीरतापूर्वक विचार करके, इस पुस्तक और पूज्य-श्री के परिश्रम से लाभ उठावे।

पूज्यश्री ने, यद्यपि शास्त्रीय-दृष्टि से ही इन ढालों की रचना की है, तथापि, संग्राहक, प्रूफ-

संशोधक या अन्य किसी कार्यकर्त्ता की असावधानी से यदि कहीं कोई त्रुटि रहगई हो, तो इसके लिये कार्यकर्त्ता जिम्मेदार हैं। यदि, कोई सज्जन, इस पुस्तक में कोई ऐसा दोष देखे, तो सूचित करने की कृपा करें, ताकि अगले संस्करण में वह शुद्ध कर दिया जा सके।

एक वात और। कहीं-कहीं इन ढालों में वड़े कड़े हेतु देने पड़े हैं। किन्तु विवशता थी। वैसा किये बिना, काम चल ही नहीं सकता था। क्योंकि जिन ढालों के उत्तर में इन ढालो की रचना की गई है, उनमें वही हेतु, प्राय: उसी स्थान पर उसी ढङ्ग से दिये गये हैं। अत: यह प्रयत्न किया गया है, कि उनका कुतर्क उन्हीं के झूठे-सिद्धान्तों के लिये घातक सिद्ध हो।

अन्त मे, हम यह कह देना भी उचित समझते हैं, कि पूज्यश्री के अथवा हमारे हृदय

मे, ऐसे भाइयों पर, उनके इस अज्ञान के कारण अत्यन्त दया है। इस ग्रन्थ मे, ढालों की रचना द्वारा जो प्रयत्न किया गया है, वह केवल अनुकम्पा-घातक, धर्म-विरोधी विचारो के साथ हमारा अतिशय तिरस्कार है। परन्तु उन विचारो को रखनेवाली आत्माओ के साथ हमारा तनिक भी विरोध नही है, प्रत्युत उनकी आत्मा के साथ पूर्ण सहानुभूति और मित्रता है। उसी आन्तरिक-दया की प्रेरणा से, रोगी को कटु-औषधि देकर उसका रोग शांत करने के प्रयत्न के समान, यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है। इसलिये हमारी सब बन्धुओ से सविनय प्रार्थना है, कि द्वेष-दृष्टि को अलग रखकर, मैत्री भावना से इसे पढ़े और हितशिक्षा ग्रहण करे। उन्हे, निष्पक्ष-दृष्टि से यह विचारना ५, कि जीवरक्षा, जैन-धर्म का ही एक

अंग है, या पापपूर्ण कार्य और जैन-शास्त्र उसका समर्थन करते हैं, या विरोध। साथ ही, यह भी देखें, कि उन्हे कैसे गहरे-गड्ढे में डाल रखा गया है, जहाँ से उनका बिना तर्क-वितर्क किये कदापि छुटकारा नहीं है। हमारा विश्वास है, कि बुद्धिमान लोग तुलनात्मक-दृष्टि से ही इस ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे। किमधिकम्।

नया-वास,
ब्यावर
श्रावण शुक्ला १५
वीर सं० २४५६
विक्रमी सं० १९८७

प्राणिमात्र का हितेच्छु
मानमल सुराणा

विषय-सूची

पहली ढाल के दोहे

नाम विषय	दोहे से दोहे तक
अनुकम्पा का स्वरूप और उसके किये गये भेदों का उत्तर—	१—१४

ढाल पहली

१—अधिकार मेघकुँवर का—	पेज	३
२—श्री नेमनाथजी का करुणा अधिकार—	,,	६
३—धर्मरुचिजी का करुणा अधिकार—	,,	१२
४—श्री महावीर स्वामी की गोशालक पर अनुकम्पा का अधिकार—	,,	१७

पेज

५—जिनऋषि का अधिकार— २४
६—हिरणगमेषी का अधिकार— २७
७—अधिकार हरिकेशी मुनि का— २८
८—धारणी की गर्भ विषयक अनुकम्पा का अधिकार— ३०
९—अधिकार कृष्णजी की वृद्ध विषयक अनुकम्पा— ३४
१०—अधिकार धूप में पड़े हुए जीवों के सम्बन्ध में— ३९
११—अभयकुमार की अनुकम्पा का अधिकार— ४२
१२—अधिकार पशु बाँधने छोडने का— ४४
१३—अधिकार व्याधि मिटावण विषयक— ५३
१४—अधिकार साधु की लब्धि से साधु की प्राण रक्षा का— ६१

१५—अधिकार मार्ग भूले हुए को साधु पेज
किस कारण रास्ता नहीं बतावे— „ ६४

दूसरी ढाल के दोहे

दोहे से दोहे तक

साधु, अनुकम्पा के लिए अपना कल्प नहीं तोड़ते जिस प्रकार वन्दन के लिए नहीं तोड़ते हैं— १–८

सावज कारणों के सेवन से, वन्दन की तरह अनुकम्पा भी सावज नहीं है, साधु अपने कल्प के अनुसार ही अनुकम्पा करते हैं— ९–२२

ढाल दूसरी

१—अधिकार जीवाँ री दया खातर पेज
दयावान मुनि ने बाँधने-छोडने का— ७०
२—अधिकार लाय बचाने का— ७

३—अधिकार अपराधी को निरपराधी कहने का— पेज ७७
४—अधिकार जीवणा-मरणा वांछणे का— ८४
५—अधिकार शीत तापादि वंछवा आसरी— ८७
६—अधिकार नौका का पानी बताने का— ९०

तीसरी ढाल के दोहे

दोहे से दोहे तक
धर्म के लिए जीना-मरना चाहनेवाले सत्यधारी शूरमा हैं— १—५

ढाल तीसरी

१—अधिकार मेघरथ राजा का पारेवा पर दया करने का— पेज ९५
२—अधिकार अरणकजी की अनुकम्पा का— ९९

पेज

३—अधिकार माता बचाने से चुलणी पिया के व्रतादि का भंग कहने-वालों को उत्तर— १०६

शूरादेव का दाखला ११२

४—अधिकार 'नमीराज ऋषि ने अनुकम्पा नहीं की', ऐसा कहनेवालों के लिए उत्तर — ११६

५—अधिकार 'नेमिनाथजी ने गजसुकुमाल की अनुकम्पा नहीं की', ऐसा कहनेवालों को उत्तर — १२१

६ —अधिकार वीर भगवान के उपसर्ग दूर करने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर — १२५

७—अधिकार 'द्वीप समुद्रों की हिंसा देवता क्यों नहीं मेटे ?' इसका उत्तर—

पेज

८—अधिकार कोणिक-चेड़ा का संग्राम मिटाने में पाप कहते हैं, इसका उत्तर— ,, १३८

९—अधिकार समुद्रपालजी ने चोर पर अनुकम्पा नहीं करी कहते, हैं, उसके विषय में — ,, १४३

चौथी ढाल के दोहे

दोहे

त्रिविध हिंसा के समान त्रिविध रक्षा को पाप कहनेवालों के विषय में— १—११

चौथी ढाल

गाथा से गाथा तक

भैंसे और जीवपूर्ण तालाब की कुयुक्ति का तथा पाप मेटने में पाप कहते हैं इसका [उत्त]र— १—२६

गाथा से गाथा तक

सहायता, सम्मान देकर मिथ्यात्वी को समकिती बनाने में पाप कहते हैं, इसका उत्तर— २७-३३

पांचवीं—ढाल

चोर, हिंसक, लम्पट को केवल उनका पाप छुड़ाने के लिये उपदेश देते हैं, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— १-११

मरते हुए बकरे का कर्ज चुकता है, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— १२-२२

बकरा और धन एक समान होने से उनके लिए उपदेश नहीं देते हैं, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— २३-२९

मरते जीव के लिये उपदेश देने से उनकी निर्जरा होती बन्द हो जाती है, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— २

गाथा से गाथा तक

'परस्त्री-पापी को उपदेश देकर पाप छुड़ाने से जारणी-स्त्री कुँए में गिरपड़ी, इसी तरह हिंसक को उपदेश देने से बकरे बच गये, बकरा बचा और स्त्री मरी, ये दोनों समान हैं, यदि एक का धर्म श्रद्धो, तो दूसरे का पाप भी मानो,' ऐसा कहने वालों को उत्तर— ४८—६९

जीवों के लिये उपदेश नहीं देते, एक हिंसक को समझाकर घणे जीवों के क्लेश नहीं मिटाते, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— ७०—७४

छः-काया के घर शान्ति नहीं होवे ऐसा कहनेवालों को उत्तर मय चित-श्रावक के दाखले के — ७५—११६

छठी ढाल के दोहे—

दोहे से दोहे तक

१—जीव बचाना और सत्य बोलने का स्वरूप — १–६

२—सत्य सावद्य-निरवद्य होता है, परंतु अनुकम्पा निरवद्य ही होती है— ७–१३

ढाल—छठी

गाथा से गाथा तक

१—छःकाया की रक्षा में पाप कहते हैं, उसका उत्तर — १–११

२—साधु की उपधि से मरते हुए जीव बचाने का विचार— १२–२३

३—श्रावक के पेट पर हाथ फेरने का कहते हैं, उसका उत्तर— २४–३२

४—बिल्ली से चूहे को नहीं छुडाना कहते हैं, उसका उत्तर— ३३–४१

५—श्रावक को मरते से बचाने का निषेध करते हैं, उसका उत्तर—

गाथा से गाथा तक

६—लट, गजायादि जीव पशुओं से मरते साधु वचाने क्यों न जाय ? इसका उत्तर— ५२–६२

७ –गोशाला वचाने में भगवान को चूके, तथा साधु को लब्धिमात्र फोडने में पाप वताते हैं, उसका उत्तर— ६३–९१

८—गोशाला को वचाने से मिथ्यात बढना कहते हैं, उसका उत्तर— ९२–९८

९—दो साधु को भगवान ने नहीं वचाये उसके विषय में— ९९–११०

सातवीं ढाल के दोहे—

१ - सबल से निर्वल को वचाने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर— दोहे १–३

पुण्य और धर्म मिश्र होते हैं या नहीं इसका स्वरूप— ४–२८

ढाल—सातवीं

गाथा से गाथा तक

१—सात दृष्टान्तों का खण्डन—गाजर मूला आदि खिलाकर जीव बचाने का कहते हैं, उसका उत्तर तथा अग्नि का, पानी का, हुक्के का, मास खाने का, मुर्दा खिलाने का, मनुष्य मारकर मनुष्य बचाने का दृष्टान्त देकर दया उठाते हैं, उसका उत्तर— १—५२

२—व्यभिचारादि दुष्कृत्यों-द्वारा जीव छुड़ाना कहते हैं, उसका उत्तर— ५४—६५

३—कसाई को मारकर जीव बचाना कहते हैं, उसका उत्तर— ६६—७२

४—श्रेणिक राजा ने पड़हा पिटाकर "अमारी" धर्म की घोषणा कराई, इसमें पाप कहते हैं, उसका उत्तर—

— गाथा से गाथा तक

५—दो वेश्याओ का दृष्टान्त देते है, उसका उत्तर - १२०—१६०

७—दो वेश्याओं के दूसरे दृष्टान्त का खण्डन— १६१—१६८

८—जीव मारे नहीं मरता है, इसलिये उसकी रक्षा में धर्म नहीं, इसका उत्तर तथा त्रसथावर की हिंसा सरीखी कहते हैं, इसका उत्तर १६९—१७४

९—पैसे से ममता उतारकर जीव बचाने-वाले को पाप कहते हैं, उसका उत्तर १७५—१८१

आठवीं ढाल के दोहे—

दोहे से दोहे तक

स्वदया और परदया दोनों शास्त्र [illegible] हैं— १—५

ढाल आठवीं

	गाथा से गाथा तक
लाय में बलते जीव को बचाने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर —	१—१०
औषधि देने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर —	११—२०
"उपदेश देकर 'हिंसा' छुड़ाते हैं" ऐसा कहने वालों को उत्तर —	२१—३७
"अकृत्य करते समय 'पाप छुड़ाने' को उपदेश देते हैं", ऐसा कहने वालों को उत्तर —	३८—४८
"श्रावक के पैर से जङ्गल में जीवों की घात क्यों नहीं छुड़ाते", ऐसा कहने वालों को उत्तर—	४९—६४
"गृहस्थ की उपधी से जीव मरते हैं, उन्हें छुड़ाने क्यों नहीं जाते हो", ऐसा कहने वालों को उत्तर —	

गाथा से गाथा तक

"समवसरण में आते जाते मनुष्यों से जीवों की घात होती थी और श्रेणिक के बछेरे ने डेंडके के रूप मे आते हुए नन्दन मनिहार को चींथ डाला। इनको बचाने महावीर स्वामी ने साधु क्यों नहीं भेजे ?" ऐसा कहने वालों को उत्तर — ७४—८४

साधु श्रावक की एक अनुकम्पा है, ऐसा कहनेवालों का विचार — ८५—९३

वर्तमानकाल में मरते जीव को बताना पाप है, ऐसा कहनेवालों को उत्तर ९४—१०२

लाय में जलते हुए जीव कर्मों की निर्जरा करते हैं, ऐसा कहनेवालों को उत्तर १०३—१०८

अल्पारम्भ गुण में नहीं है, ऐसा कहनेवालों को उत्तर — १०९—१२१

लाय बुझाने का अल्पारम्भ यदि —गाथ में है, तो साधु बुझाते क्यों नहीं ! ऐसा कहने वालों को उत्तर — १२२—१३२

गाथा से गाथा तक

आग बुझाना और कसाई को मारना एक सरीखा कहते हैं, उनको उत्तर— १३३–१४२

ढाल नवमी

दया के साठ नाम— १–२५

त्रिविधि से जीव रक्षा करने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर— २६–३५

रक्षा करने में जीव मरते हैं, अत. रक्षा पाप है. ऐसा कहनेवालों को उत्तर ३६–५५

"साधु को जीव नहीं बचाने तथा रक्षा को भली नहीं समझनी" ऐसा कहनेवालों को उत्तर— ५६–६१

जीव का जीना नहीं चाहते, सिर्फ घातक का पाप टालना चाहते हैं, ऐसा कहनेवालों को उत्तर— ६२

गाथा से गाथा तक

"त्रिविधे-त्रिविधे जीव रक्षा न करणी"
का उत्तर— ७०–७५

प्राणी, भूत, जीव, सत्व की रक्षा मे
एकान्त-पाप कहते है, उसका उत्तर— ७६–८३

धर्म के कार्य मे आरम्भ करने से
समकित जाती है, ऐसा कहनेवालों को
उत्तर— ८४–९१

साधर्मी वत्सलता को एकान्त-पाप
कहनेवालों को उत्तर— ९२–९१

जीवों का दु:ख मिटाने में एकान्त
पाप कहते हैं, उसका उत्तर— ९८–१०५

धर्मकार्य में हिंसा करने से बोध का
बीज नष्ट होता है, ऐसा कहनेवालो को
मकान के उदाहरण सहित उत्तर— १०६–१०९

"दर्शन को धर्म में और हिंसा को
पाप मे अलग-अलग मानते हैं" उसका
— ११०–११७

गाथा से गाथा तक

"यदि आरम्भ से उपकार होता है,
तो झूठ चोरी से भी होना चाहिए"
ऐसा कहने वालों को उत्तर— ११८–१२४
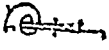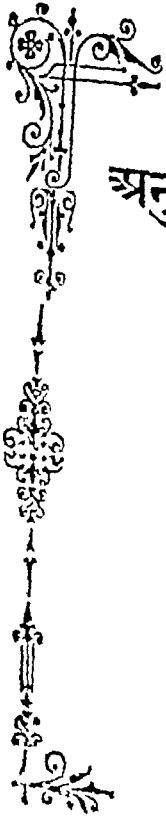
दया का स्वरूप— १२५–१२९
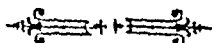
अनुकम्पा विचार

श्रीमज्जवाहिराचार्य
विरचितम्

ॐ अर्हम्

अनुकम्पा-विचार

दोहा

करुणा वरुणालय प्रभो, मङ्गलमूल अनन्त।
जय-जय जिनवर विबुधवर, सुखमय सुषमावन्त॥ १॥
अनन्त जिन हुआ केवली, मनपर्य्यव मतिमन्त।
अवधिधर मुनि निर्मला, दशपूर्व लगि सन्त॥ २॥
आगम धारिया ये सहू, भाषे आगम सार।
वचन न श्रद्धे तेहना, ते रुलसे संसार॥ ३॥
अनुकम्पा आछी कही, जिन-आगम रे माँय।
अज्ञानी सावज कहे, खोटा चोज लगाय॥ ४॥

ालाँ नहि, जालाॅ हुई, अनुकम्पा री घात।
ंचमकाल प्रभाव थी, हा! हा! त्रिभुवन तात! ॥ ५॥
नुकम्पा उठायवा, मॉडी माया जाल।
ूख मछला ज्यो फॅस्या, रुले अनन्तो काल ॥ ६ ॥
ःखमि आरे पंचमे, कुगुरु चलायो पन्थ।
नुकम्पा खोटी कहे, नाम धरावे सन्त ॥ ७ ॥
ाक-थोर ना दूध सम, अनुकम्पा बतलाय।
न सो सावज नाम दे, भोला ने भरमाय ॥ ८ ॥
पाप सावज नाम है, हिंसादिक थी होय।
नुकम्पा हिंसा नहीं, सावज किस विध होय ॥ ९ ॥
नुकम्पा रक्षा कही, दया कही भगवन्त।
ाप कहे कोई तेहने, मिथ्या जाणों तन्त ॥ १० ॥
मृत एक सो जाणज्यो, अनुकम्पा पिण एक।
ेद प्रभू नहि भाषियो, सूतर मॉही देख ॥ ११ ॥
ो पिण कुगुरु कदाग्रहे, चढ़िया विस्वा बीस।
करे परूपणा, करड़ी ज्यॉरी रीस ॥ १२ ॥

निरवद ने सावद वलि, अनुकम्पा रा भेद।
अणहूँता कुगुरु करे, ते सुण उपजे खेद ॥ १३ ॥
भरमजाल ताडन तणूँ, रचूँ प्रबन्ध रसाल।
धारो भवजीवाँ तुम्हे, वरते मङ्गलमाल ॥ १४ ॥

ढाल-पहली
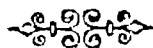
१—अधिकार मेघकुँवर का

(तर्ज—धिग धिग छे उणी नागश्री ने)

मेघकुँवर हाथी रा भव में,
करुणा करी श्री जिनजी बताई।
प्राणी, भूत, जीव, सत्व री,
अनुकम्पा की, समकित पाई।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥ अनु० ॥ १ ॥

निज देह री परवा नहि राखी,
पर-अनुकम्पा रो हुवो रसियो ।
वीस पहर पग ऊँचो राख्यो,
पर-उपकार सूँ मन नहि खसियो ॥अनु०॥२॥
पड़तसंसार कियो तिण विरियाँ,
श्रेणिक घर उपनो गुण पाई ।
आठ रमणी तज दीक्षा लीधी,
ज्ञाता अध्ययने गणधर गाई॥ अनु० ॥ ३ ॥
(कहे) "बलता जीव दावानल देखी,
सुण्ड सूँ पकड़ के नाय बचाया ।"
मूढ़मत्याँ री या खोटी कलपना,
बलता जीव सूतर न बताया ॥ अनु० ॥ ४ ॥
मण्डल जीवाँ थी पूरण भरियो,
शस बैठन ने स्थान न मिलियो ।
जीव लाय किण जागा मेले,
खोटो-पक्ष मिथ्याती झलियो ॥ अनु० ॥५॥

सुसलां न मारथो अनुकम्पा बतावे,
(तो) एक जोजन मण्डल रे मांइ ।
जीव घणा जामें आइने बसिया,
(त्याँ) सगला ने हाथी तो मारथा नाहीं ॥अनु०॥६।
(जो) सुसलो न मार्या रो धर्म बतावो,
(तो) दूजा (ने) न मार्यां रो क्यों नहि केवो ।
(जो) सुसला रा प्राण बचाया धर्म है,
तो दूजा जीव बचाया रो (पिण) केवो ॥ अनु० ॥७।
जोजन मण्डले जीव जो बचिया,
मन्दमती ताने पाप * बतावे ।

---

* जैसा कि वे कहते हैं.—
मोडलो एक जोजन नो कीधो,
घणा जीव बचिया तहो आई ।
तिण बचिया रो धर्म न चाल्यो,
समकित आया बिन समझ न कोई ।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥
(अनुकम्पा ढाल १ गाथा ४)

त्याँरे लेखे, मुसलो बँचिया रो,
'धर्म' कहो जी किण विध थावे ॥ अनु० ॥८॥
उलटी मती सूँ ऊँधी ताणे,
जीव बचाया मे पाप बखाणे ।
हाथी तो जीव बचाइ ने तिरियो,
उत्तम जन शङ्का नहि आणे ॥ अनु० ॥९॥

२—नेमनाथजी का करुणा अधिकार

तीन ज्ञान धर नेम प्रभूजी,
व्याव न करणा निश्चय जाणे ।
बाल-ब्रह्मचारी बाविसमों,
होसी जिनवर जिनजी बखाणे ॥ अनु० ॥१॥
जीव दया सब जग ने बतावा,
जादवी हिंसा मेटण काजे ।
पंचेन्द्रि प्राणी रा प्राण बचावा,
प्रत्यक्ष न्याय प्रभूजी रो राजे ॥ अनु० ॥२॥

इत्यादि उपकार रे अर्थे,
    स्थावर करण री बात ज मानी ।
स्नान अर्थे पाणी बहु ढेल्यां,
    जामें भी जीव ,जाणे बहु ज्ञानी ॥ अनु० ॥३॥
पिण पशु-पखी री हिंसा मोटी.
    त्हा पिण ज्यारी मोटी जाणी ।
यां री भेद सब जग ने बतावा,
    स्नान कियो सूतर री या वाणी ॥ अनु० ॥४॥
मन्दमती कहे जीव सरीखा.
    एकेन्द्री पंचेन्द्री भेद न दाखे ।
छोटी, मोटी हिंसा रा भेद ने,
    कोई अज्ञानी 'सरीखा' भाखे ॥ अनु० ॥५॥
जो या श्रद्धा नेम री होती.
    तो पाणी ने ढोळि स्नान न करता ।
पाणी रा जीवों थी अनंत्यगुणा ये,
    सरणा-ढूंढ़ि ने पीड़ा फिरता ॥ अनु० ॥६॥

पशुपंखी री दया (रक्षा) रे माँहीं,
    लाभ घणो प्रभु परगट कीनो ।
अल्प हिंसा पाणी री जाणे,
    तिण थी पंचेन्द्रिय मे मन(ध्यान)दीनो।। अनु० ॥७
छोटी-मोटी हिंसा-रक्षा रो,
    ज्ञानी तो भेद परगट जाणे ।
मन्दमती रक्षा नहिं चावे,
    तेथी ते तो ऊँधी ताणे ॥ अनु० ॥८॥
स्नान करी परणीजण चाल्या,
    तोरण पर देख्या बहु प्राणी ।
वाड़ा पिंजर मे रुकिया दुखिया,
    सूत (सारथि) से पूछे करुणा आणी ॥ अनु० ॥९॥
सुख अर्थी ये जीव बिचारा,
    क्योंकर याँने दुखिया कीधा ।
तब तो सारथि इणविध बोले,
    स्वामी वचन सुणो हम सीधा ॥ अनु० ॥१०॥

ये सहु भद्रक प्राणी प्रभुजी,
 व्याह कारण तुमरो मन आणी ।
आमिष (मांस) भक्षी रे भोजन सारू,
 बाँध्या छे घात दिल ठाणी ॥ अनु० ॥११॥
सारथि वचने रु ज्ञान से जाणी,
 दीनदयालु दया दिल आणी ।
जीवाँ तणो हित वंछ्यो स्वामी,
 आतम सम जाण्या ते प्राणी ॥ अनु० ॥१२॥
व्याह रे काज मरे बहु प्राणी,
 हिंसा से डरिया निर्मल ज्ञानी ।
सारथि प्रभुजी री मनस्या जाणी,
 जीवों ने छोड़ दिया अभयदानी ॥ अनु० ॥१३॥
जीव छुट्या सूँ नेमजी हरख्या,
 वत्तीसी दीनी सूत्र में गाई ।
कुण्डल युग्म अरू कणडोरो,
 सर्व आभूषण दीधा वधाई ॥ अनु० ॥१४॥

पीछे वरषीदान जो दीधो,
दान-दया दोनूँ ओलखाया ।
संजम सहस्रावन में लीधो,
केवल ले प्रभु मोक्ष सिधाया ॥ अनु० ॥१५॥
(कहे) "जीवाँ री हित नहिं नेमजी वंछ्यो",
दीपिकादिक री साख बतावे ।
दीपिका में हितकारी (अर्थ) * भाख्यो,
उणने अज्ञानी जाण छिपावे ॥ अनु० ॥ १६॥
नहि मारण ने हित बतावो,
(तो) जीव बचाया अहित किम थावे ।
नहि मारण निज हित पहिछाणो,
मरता बचाया स्व-पर हित पावे ॥ अनु० ॥१७॥

---

* *"साणुक्कोसे जिएहिओ"*
(उत्तराध्ययय सूत्र, अ० २२ गा० १८)
टीका—सानुक्रोश सह अनुक्रोशेन वर्तते इति सानु
[illegible]ः सदयः जीवे हित. जीव विषये हितेप्सु. ।

जीव बचे जीने रक्षा कही प्रभु,
देही (जीव) री रक्षा ने दया बताई।
शम्बरद्वार में पाठ उघाड़ो,
मन्दमती रे मन नहि भाई ॥ अनु० ॥१८॥
"जीवाँ ने नेमजी नाँय छुड़ाया,"
मन्दमती एवी वात उच्चारे।
"अवचूरी दीपिका टीका" अर्थ ने,
मिथ्या उदय थी नाय विचारे ॥ अनु० ॥१९॥
जीव छुट्या री बत्तीसी दीधी,
"अवचूरी दीपिका टीका।" देखो।

१—"जइ मज्झ कारणा ए ए, हम्मंति सुबहू जिया। न मे एय तु निस्सेस परलोगे भविस्सई ॥ सो कुण्डलाण जुयल, सुत्तग च महायसो। आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स

मूल पाठे वचीमी भापी,
मंदमती ! जग समभो लखो ॥ अनु०॥२०॥

पणामई ॥ (उत्त० सूत्र अ'य० २२ गाथा १९-२०)

दीपिका—तदा नेमिकुमार किं चिंतयतीत्याह यदि मम विवाहादि कारणेन एते सुवहव' प्रचुरजीवा हनिष्यन्ते। मारयिष्यन्ते तदा ए तत् हिंसाख्य कर्म परलोके परभवे नि.श्रेयसं कल्याणकारी न भविष्यति परलोक भीरुत्वस्य अत्यन्तं अभ्यस्ततया एवं अभिधानं अन्यथा भगवतश्चरमदेहत्वात् अतिशय ज्ञानत्वाच्च कुत एव विधा चिन्ता इति भाव' ॥ १९ ॥ स नेमिकुमारो महायशा नेमिनाथस्याऽभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु वन्धनेभ्यो मुक्तेषु सत्सु सर्वाणि आभरणाणि सार्थये प्रणामयति ददाति तान्याभरणाणि कुण्डलाना युगलं पुन सूत्रकं कटिदवरकं चकारात् आभरण शब्देन हारादीनि सर्वाङ्गोपाङ्ग भूषणानि सार्थये ददौ ॥ २० ॥

टीका—भवान्तरेषु परलोक भीरुत्वस्यात्यन्तमभ्यस्तत· धानमन्यथा चरम शरीरत्वादतिशय ज्ञानित्वाच्च

आज पिण या परतख दीखे छे,
मनमाने काम से स्वामी रीझे ।
जब राजी हो बत्तीसी देवे,
पण्डित न्याय बिचारी लीजे ॥ अनु० ॥२१॥

जीव छुट्या प्रभु राजी न होता,
बत्तीस नेमजी काहे को देता ।
"निर्दय ऐसो न्याय न लेखे"
करुणाकर यों परगट केता ॥ अनु० ॥२२॥

३—धर्मरुचिजी का करुणा अधिकार

कटुक आहार जेहर सम जानी,
परठण री गुरु आज्ञा दीनी ।

भगवतः कृत एवंविधचिन्तावसर. ? एवंच विदित भगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोपितोऽसौ यत्कृतवांस्तदाह—'सो' इत्यादि 'सुत्तकंचे' तिक्टीसूत्रम्, अर्पयतीति योग', किमेत देवेत्याह—आभरणानि च सर्वाणि शेषाणीति गम्यते ।

सावग रे। निषेध जो कीनो,

धर्मरुचीजी 'तहत' कर लीनी ॥ अनु० ॥१॥

कटुक आहार सुँ किडियाँ मरती,

अनुकम्पा मुनि मन माँही आनी ।

कडवा तुम्बा रो भोजन कीधो,

धर्मरुचीजी 'धन गुणखानी' ॥ अनु० ॥२॥

गुरु आज्ञा विन आहार कियो मुनि,

किड़ियाँ री अनुकम्पा आणी ।

विशुद्धभाव मुनि रा अति आछा,

आराधिक हुवा गुणखानी ॥ अनु० ॥३॥

कहत कुतर्की "धर्मरुचीजी (तो),

किड़ियाँ बचावण भाव न ल्याया ।

आपाँ सूँ मरता जीव जाणी ने,

पाप हटा मुनि कर्म खपाया" ॥ अनु० ॥४॥

जीव बचावा मे पाप बतावा,

इण विध भोला (जन) ने भरमावे ।

न्यायवादी ज्ञानीजन पूछे,
(तो) मंदमती ने जाब न आवे ॥ अनु० ॥५॥
अचित मही मुनि बिन्दू परठ्यो,
किड़ियाँ मारण रा नहि कामी ।
ज्ञान विना किड़ियाँ खा मरती,
जाने बचावण कामी स्वामी ॥ अनु० ॥६॥
अचित भू परठ्याँ पाप जो लागे,
तो गुरु परठण री आज्ञा न देता ।
उच्चारादि नित मुनि परठे,
उपजे मरे जीव त्याँ माही केता ॥ अनु० ॥७॥
तिण री हिंसा मुनि ने नहिं लागे,
सूतर माँहीं गणधर भाषे ।
धर्मरुचीजी तो विध से परठ्यो,
जिनसे पाप कुतर्की दाखे ॥ अनु० ॥८॥
जो मुनि कड़वो तुम्बो न खाता,
तो परठ्याँ दोष मुनी ने न कोई ।

करुणासागर किड़ियाँ रे खातिर,
निज तन री परवा नहिं लाई ॥ अनु० ॥९॥
या अधिकाई जीवदया री,
सूतर मे गणधरजी गाई ।
"पराणुकम्पे नो आयाणुकम्पे ※"
चौथा ठाणा मे यो दरशाई ॥ अनु० ॥१०॥
परजीवाँ रा प्राण बचावन,
अपना प्राण री परवा न राखे ।

※—*चत्तारि पुरिसजाया प० त०—आयाणुकम्पए, णाममेगे नो पराणुकम्पए ॥*

(ठाणांगसूत्र ठाणा ४ उद्दे० ४ सूत्र ३५२)

टीका—आत्मानुकम्पक —आत्महित प्रवृत्तः प्रत्येकबुद्धो जिनकल्पको वा परानपेक्षो वा निर्घृण, परानुकम्पको निष्ठितार्थतया तीर्थंकर आत्मानपेक्षो वा दयैकरसो मेतार्यवत्, उभयानुकम्पक· स्थविरकल्पिक उभयाननुकम्पक· पापात्मा [illegible]रिकादिरिति ॥

ऐसा तो विरला इण जग मे,
धर्मरुची सा शास्तर साखे ॥ अनु० ॥११॥

४—श्री महावीरस्वामी की गोशालक पर अनुकम्पा का अधिकार

केवलज्ञानी वीर जिनेश्वर,
गोतमजी को भेद वतायो ।
दयाभाव (से) अनुकम्पा करने,
मैं पिण गोशाला ने वचायो ॥ अनु० ॥१॥
गोशाल वचाया मे पाप होतो तो,
गोतमजी ने क्यो नहि कीनो ।
"पाप कियो मैं, तुम मत करज्यो,"
यो उपदेश प्रभू क्यो न दीनो ॥ अनु० ॥२॥
केवली तो अनुकम्पा केवे,
मन्दमती तामे पाप वतावे ।

ज्ञानी वचन तज मूढाँ री माने,
वे नर मोह मिथ्यातम पावे ॥ अनु॰ ॥३॥
असंजती रो नाम लेई ने,
गोशाल बचाया रो पाप जो केवे ।
माखी-मूषक पात्र से काढे,
ज्याँरा तो जाव सरल नहि देवे ॥ अनु॰ ॥४॥
जूँवाँ असंयति ने वे पोषे,
पाप जाणे तो क्यो नहि फेंके ।
जद कहे म्हारी दया उठ जावे,
(तो) वीर ने दोप कहो कुण लेखे ॥ अनु॰ ॥५॥
प्राणि आदि अनुकम्पा करने,
वैसायण जूँवाँ शिर धारे ।
सूत्र भगोती सतक पन्द्रहवे.
केवल ज्ञानी वचन उचारे ॥ अनु॰ ॥६॥
प्राणी भूत जीव सत्वानुकम्पा,
सातावेदनी रो कारण भाष्यो ।

सप्तम शतक छठे उद्देशे,
वीर प्रभू गौतम ने दाख्यो ॥ अनु० ॥७॥
मेघकुँवर अधिकार पाठ यों,
प्राणी भूतादि जीवदया रो ।।
यों पाठाँ में असंजति आया,
पाप नहीं अनुकम्पा किया रो ॥ अनु० ॥८॥
अनुकम्पा उठावन कारण,
वीर ने द्वेषी पाप बतावे ।
सूत्र रो न्याय बतावे ज्ञानी,
तो मंदमती ने जवाब न आवे ॥ अनु० ॥९॥
(कहे) "दोय साधाँ ने क्यों न बचाया,
गोशाला थी बलता जाणी।"
(उत्तर) आयुष आयो ज्ञानी जाण्यो,
न्याय न सोचे खेंचाताणी ॥ अनु० ॥१०॥
विहार कराया तो थारे (पिण) लेखे,
दोष तो कोई लेश न लागे ।

क्यो न विहार करायो स्वामी,
    घात जाणता (था) दोनाँ री सागे ॥अनु०॥११॥
जद कहे "निश्चय ज्ञान में देख्यो,
    दोनाँ री घात यहाँ ऊज आई ।
जासूँ विहार करायो नाही,
    भवितव्यता टाली नहि जाई" ॥अनु० ॥१२॥
सरल भाव यो ही तुम शरधो,
    अनुकम्पा मे (तो) पाप न काँई ।
ज्ञानी ज्ञान देखे ज्यो वरते,
    तिणरी खैंच करो मत भाई ॥ अनु० ॥१३॥
अनुकम्पा सावज थापण ने,
    सूत्रपाठ रा अरथ ने ठेले ।
छे लेश्या छद्मस्थ वीर रे,
    बोल मिथ्याती पाप को झेले ॥ अनु० ॥१४॥
किसन, नील, कापोत लेश्या रा,
    भाव में साधुपणो नहि पावे ।

प्रथम शतक दूजे उद्देशे*,
(तो) वीर में पट्लेश्या किम थावे ॥अनु० ॥१५॥
"कषाय कुशील" रो नाम लेई ने,
अज्ञानी भोला (ने) भरमावे ।
मूल-उत्तर गुण दोष न सेवे,
भाव माठी लेश्या किम पावे ॥ अनु० ॥१६॥
कषाय कुशील भाव लेश्या जो माठी,
होती (तो) अपड़िसेवी क्यो कहता ।
इण लेखे द्रव्य लेश्या छ जाणो,
भाव लेश्या (रा) शुध भाव वदीता ॥अनु० ॥१७॥
'कषायकुशील' 'सामायिक' चारित्रे,
छे लेश्या रो नाम जो आयो ।
प्रथम शतक दूजे उद्देशे,
टीका में तिण रो भेद वतायो ॥ अनु० ॥१८॥

---

* भगवती सूत्र

किस्न नील कापोत द्रव्य लेश्या (में),
    साधुपणो शुद्ध भावे जाणो ।
छे लेश्या तिण लेखे कहिये,
    भावे तो तीनो ही शुद्ध पिछाणो ॥अनु० ॥१९॥
तेथी छे लेश्या द्रव्य कहिये,
    भावे तो तीनो ही शुद्ध पिछाणो ।
कषायकुशील अरु संजम माँही,
    भाव खोटी लेश्या मत ताणो ॥अनु० ॥२०॥
छेदोस्थापन अरु सामायिक,
    संयम छे लेश्या द्रव्य जाणो ।
यो ही न्याय मनपर्यवज्ञाने,
    भावे तो तीनो ही शुद्ध पिछाणो ॥अनु० ॥२१॥
इण न्याय द्रव्य छे लेश्या पावे,
    ज्ञानी न्याय जुगत से बतावे ।
डाहा होय विवेक सूँ तोले,
    खोटी ताण से समकित जावे ॥अनु० ॥२२॥

पूलाक पडिसेवन कुशील ने,
मूल उत्तरगुण दोषी भाख्या ।
ते (पिण) तीनूँ भाव शुद्ध लेश्या में,
मूलपाठे सूतर मे दाख्या ॥ अनु० ॥२३॥
वुक्स पिण उत्तरगुण दोषी,
तीन भावलेश्या तिहाँ पावे ।
कपायकुशील तो दोष न सेवे,
खोटी लेश्याँ रा भाव क्यो आवे ॥अनु० ॥२४॥
कल्पातीत अरु आगम विहारी,
छद्मस्थपणे प्रभु पाप न कीनो ।
आचारंग नवमे अध्ययने,
केवलज्ञानी परकाश यूँ दीनो ॥अनु० ॥२५॥
अनुकम्पा कर गोशालो वचायो,
मन्दमती रे मन नहीं भायो ।
अछती छे लेश्या प्रभु रे लगाई,
अनुकम्पा-द्वेषी आल चढ़ायो ॥अनु०

५—जिनऋषि का अधिकार

(कहे) "जिनऋषि यह अनुकम्पा कीधी,
रेणादेवी सामो तिण जोयो ।
शैलक यक्ष हेठो उतारयो,
देवी आय तिण खड्ग मे पोयो ।
आ अणुकम्पा सावज जाणो ॥"

(अनु० ढाल १ गा० १०

सूत्र विरुद्ध यो बात उठा केई,
अनुकम्पा सावज बतलावे ।
अनुकम्पा पाठ तिहाँ नहि चाल्यो,
अज्ञानी झूठ रा गोला चलावे ॥अनु० ॥१॥
'कलुणरसे' रयणा जद बोली,
जिनऋषियाँ रे कलुणरस आयो ।
कलुण पाठ ज्ञातासूतर में,
तो पिण भोला भरम फैलायो ॥अनु० ॥२॥

कुणरस अनुयोग दुवारे,
आठवो (रस) पाठ मे वीर बतायो ।
थ रो वियोग हुवा यो आवे,
ऐसो श्री गणधरजी गायो ॥ अनु० ॥३॥
ज रस जिणऋपियाँ रे आयो,
रेणादेवी रा वियोग थी पायो ।
नँ सूतर रो पाठ सरीखो,
लक्षण से भी तुल्य दिखायो ॥ अनु० ॥४॥
ह कलुणरस मे अनुकम्पा,
भेषधारयाँ ए झूठी गाई ।
ङ्का होवे तो सूतर देखो,
मत पड्ज्यो झूठा फँद माँई ॥ अनु० ॥५॥
ाणाङ्ग दशमें ठाण रे माँही,
अनुकम्पा-दान प्रथम बतायो ।
कालुणी दान रो पाठ छे न्यारो,
अर्थ दोन्यॉ रो न्यारो दिखायो ॥ अनु० ॥६॥

'कलुण' (रस) 'अनुकम्पा' एक नहीं छे,
(कहे) "ज्ञातासूत्र" रो भेद वतायो ।
रे अनुकम्पा, दया, रक्षा, कहिये,
शैलक कालुण (रस) दुःख वियोग मे गायो ॥अनु० ॥७॥
दे रात-दिवस ज्यां दोनो ही न्यारा,
आ अण तो पिण मंद भोला भरमावे ।
कलुणरस तो मोह मलिन है,
सूत्र विरु अज्ञानी अनुकम्पा मे लावे ॥ अनु० ॥८॥
अनुयोगद्वार तीजा रे मॉही,
दीन आरत रे कलुण वतायो ।
अङ्गे अंग प्रथम श्रुतखंधे,
'कलुणरसे घणा अध्ययन मे योहीज आया ॥ अनु० ॥९॥
जिनोक आरत भावे कलुणरस है,
कलुण पाट सूतर साख लेवो तुम धारी ।
तो कलुणरस, अनुकम्पा, करुणा;
एक सरीखी न सूत्र उचारी ॥ अनु० ॥१०॥

६—हिरणगमेषी का अधिकार

हिरणगमेषि (देव) अनुकम्पा करने,
देवकि-बालक सुलसा ने दीधा ।
चर्मशरीरी छउ जीव बचिया,
संजम पालि ने होगया सिद्धा ॥ अनु० ॥१॥
मन्दमत्याँ रे मन नहिं भाया,
(तासूँ) हिरणगमेषी ने पाप बतावे ।
जावण आवण रो नाम लेई ने,
अनुकम्पा ने सावज गावे ॥ अनु० ॥२॥
जावण आवण री तो किरिया न्यारी,
अनुकम्पा (तो) परिणामाँ मे आई ।
जिन वन्दन देव आवे ने जावे,
(तो) वँदना सावज जिन ना बताई ॥अनु०॥३॥
आवण जावण (से) अनुकम्पा जो सावज,
(तो) वन्दना ने पिण सावज कहणी ।

(जो) आवण जावण वँदना नहि सावज,
(तो) अनुकम्पा पिण निरवद्य वरणी ॥अनु०॥४॥

मंदमती ऊँधी शरधा सूँ,
अनुकम्पा सावज बतलावे ।
वन्दना ने तो निरवद्य के वे,
जाणे म्हारी पूजा उठजावे ॥ अनु० ॥५॥

देव करी सुलसा री करुणा,
ते थी छेहूँ बाल बचाया ।
कंस रा भय थी निरभय कीधा,
अभयदान फल देवता पाया ॥ अनु० ॥६॥

७—अधिकार हरिकेशी मुनि का

हरिकेशी मुनि गोचरी आया,
जाँरी निन्दा ब्राह्मण कीनी ।
जक्षदेव अनुकम्पक मुनि रो,
शास्तरयुक्त समझ बहु दीनी ॥ अनु० ॥१॥

अनुकम्पा थी धर्म वतायो,
मूलपाठ रा वचन है सीधा ।
मन्द कहे "अनुकम्पा रे कारण,
रुधिर वमन्ता ब्राह्मण ॐकीधा" ॥ अनु०॥२॥

अनुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
मिथ्या बोलताँ मूल न लाजे ।
ज्ञानी सूतरपाठ दिखावे,
अज्ञानी जव दूरा भाजे ॥ अनु० ॥३॥

साँचा हेतू जद सुणाया,
(जद) ब्राह्मण बालक मारण आया ।
राजकुमारी भद्रा वारया,
तो पिण मूढ नहीं शरमाया ॥ अनु० ॥४॥

ॐ —जैसे कि वे कहते हैं.—
यक्ष रे पाद हरिकेशी आया, अशनादिक त्याने नहीं दीधा ।
यक्ष देवता अनुकम्पा कीधी, रुधिर वमंता ब्राह्मण कीधा ॥
(अनु० ढाल १ गाथा १

यज्ञदेव ने कोप जो आयो,
कष्ट देई ब्राह्मण समझाया ।
कूटनहार ने जक्षे कूट्या,
शास्तर माँहे प्रगट बताया ॥ अनु० ॥५॥
अनुकम्पा थी तो वचन उचार्‌या,
पिण न दया थी ब्राह्मण मार्‌या ।
भवजीवाँ ! तुमे साँची शरधो,
अज्ञानी खोटा वचन उचार्‌या ॥ अनु० ॥६॥

८—अधिकार धारणी की गर्भ विषयक अनुकम्पा ।

गर्भ री अनुकम्पा करी राणी,
धारणी अजतना सहु टारी ।
जयणा सूँ बैठे ने जयणा सूँ ऊठे,
खाटामीठा भोजन तजे भारी ॥ अनु० ॥१॥
पने गमता भोजन छोड़्या,

गर्भ हितकारी भोजन करती ।
चिन्ता, भय, अरु, शोक, मोहादी,
दुखदाई जाणी परहरती ॥ अनु० ॥२॥
ऊँधो अर्थ करी कहे मूरख,
"धारणीजी अनुकम्पा आणी ।
आपने गमता भोजन खाया *"
झूठी बात कुगुरु मुख आणी ॥ अनु० ॥३॥
अनुकम्पा कर भय: मोह त्याग्यो.
या तो पन्थी दीनी छुपाई ।
भोजन पण मनमान्या न खाया.
मनमान्या खानारी झूठी छाई ॥ अनु० ॥४॥

---

* जैसा कि वे कहते हैं —

मोह त्याग्यो अनुकम्पा रे अर्थे,
    तिणने मोह अनुकम्पा बतावे ।
मत अन्धा होय झूठा बोलो,
    आँधा री लारे आँधा जावे ॥ अनु० ॥५॥
श्रावक रा पहला व्रत माँई,
    पञ्चम अतिचारे प्रभु केवे ।
अशन समय भातपाणी न देवे,
    (तो) अतिचार लागे व्रत नहि रेवे ॥अनु०॥६॥
भातपाणी छोड़ाया हिंसा,
    (तो) गर्भ भूखे मार्‌या किम धर्मी ।
अज्ञानी इतनो नहि सोचे,
    गर्भ री दया उठाई अधर्मी ॥ अनु० ॥७॥
जो बालक ने नाय चुँखावे,
    (तो) पेलो व्रत श्राविका रो जावे ।
(जो) गर्भ ने बाई भूखों मारे,
    तो तप-व्रत तिण रे किम थावे ॥ अनु० ॥८॥

गर्भवती ने तपस्या करावे,
उपवासादि रो उपदेश देवे।
गर्भ मरे तिण री दया नांहीं,
प्रगट अधर्म ने धर्म वे केवे ॥९॥
गर्भ आहार माता रे आहारे,
'भगवती' माँहीं वीरजी भाखे।
आहार छोड़ावे ते भूखा मारे,
वेषधारी दया दिल नहि राखे ॥१०॥
गर्भ अनुकम्पा धारणी कीनी,
सूतर माँहीं गणधर गाई।
दया रहित रे (तो) दाय न आई,
ज्ञानी अनुकम्पा आछी बताई ॥११॥
गर्भ ने दुःख न देणो कदापि,
समदृष्टी अनुकम्पा राखे।
दोपद चौपद भूखा न मारे,
पहले व्रत में जिनवर भाखे ॥१२॥

९—अधिकार कृष्णजी को वृद्ध विषयक अनुकम्पा

श्रीकृष्ण नेम ने वन्दन चाल्या
बूढा ने अति ही दुखियो जाणी ।
जीर्ण जरा थी थर-थर कम्पे,
देखि ने मन अनुकम्पा आणी ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥
इणरी ईंट श्रीकृष्ण उठाई,
बूढ़ा रे घर निज हाथ पुगाई ।
दुरगुण नाशक सद्‌गुण भासक,
अनुकम्पा री रीत दिखाई ॥२॥
मोह-अनुकम्पा इणने बतावे,
अज्ञानी ऊँधा हेतु लगावे ।
स्वार्थ रहित अनुकम्पा धरम ने,
सावज कहि कहि जन्म गमावे ॥३॥
ट तोकण जिन आज्ञा न देवे,

तिन सूं अनुकम्पा सावज केवे ।
ऊंधी श्रद्धा थी ऊंधो सूझै,
तिणथी कुहेतू बहुला देवे ॥ ४ ॥
अनुकम्पा परिणाम में आई,
ईंट तोकण किरिया छे न्यारी ।
(जो) नेमवन्दन री मनसा जागी,
(तव) चतुरंगी सेना सिणगारी ॥५॥
सेन्या री जिन आज्ञा नहिं देवे,
वन्दनभाव तो निर्मल जाणे ।
(तिम) ईंट तोकण री आज्ञा न देवे,
(पिण) अनुकम्पा जिन आछी वखाणे ॥६॥
वन्दनकाजे सेना चलाई,
अनुकम्पा काजे ईंट उठाई ।
सेना चले वन्दन नहि सावज,
अनुकम्पा ईंट थी सावज नांई ॥७॥
ऊंघ गोत वन्दन फल भाख्यो,

६—अधिकार कृष्णजी को वृद्ध विषयक अनुकम्पा

श्रीकृष्ण नेम ने वन्दन चाल्या
    वृढा ने अति ही दुखियो जाणी ।
जीर्ण जरा थी थर-थर कम्पे,
    देखि ने मन अनुकम्पा आणी ।
    अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥
उणरी ईंट श्रीकृष्ण उठाई,
    वृद्धा रे घर निज हाथ पुगाई ।
दुरगुण नाशक सद्‌गुण भासक,
    अनुकम्पा री रीत दिखाई ॥२॥
मोह-अनुकम्पा इणने बतावे,
    अज्ञानी ऊँधा हेतु लगावे ।
स्वार्थ रहित अनुकम्पा धरम ने,
    सावज कहि कहि जन्म गमावे ॥३॥
ट तोकण जिन आज्ञा न देवे,

तिन सूँ अनुकम्पा सावज केवे ।
ऊँधी श्रद्धा थी ऊंधो सूझे
तिणथी कुहेतू, बहुला देवे ॥ ४ ॥
अनुकम्पा परिणाम मे आई,
ईंट तोकण किरिया छै न्यारी ।
(जो) नेमवन्दन री मनसा जागी,
(तब) चतुरंगी सेना सिणगारी ॥५॥
सेन्या री जिन आज्ञा नहि देवे,
वन्दनभाव तो निर्मल जाणे ।
(तिम) ईंट तोकण री आज्ञा न देवे,
(पिण) अनुकम्पा जिन आज्ञी वखाणे ॥६॥
वन्दनकाजे सेना चलाई,
अनुकम्पा काजे ईंट उठाई ।
सेना चले वन्दन नहि सावज,
अनुकम्पा ईंट थी सावज नाँहि ॥७॥
ऊँच गोत्र वन्दन फल भाख्यो,

उत्तराध्ययन गुणतीस रे मांही ।
अनुकम्पा फल सातावेदनी,
भगवतिसूत्रे जिन फुरमाई ॥८॥
दोनो कारज आज्ञा जाणो,
समदृष्टी रे आज्ञा मांई ।
भवछेदन (ससार घटत) सकाम निर्जरा,
ज्ञानादिक मूलर मे आई ॥९॥
पुण्य बँधे अज्ञानीजन रे,
अकाम निर्जरा ते पिण पावे ।
आगे चढ़ताँ समकित पावे
जद वो जिन आज्ञा मे आवे ॥१०॥
दुखिया दीन दरिद्री प्राणी,
पंचेद्रिय जीवो ने मारण धावे ।
मांस अर्थी भूख दु ख रा पीडया,
(वाँ) अज्ञानी जीवाँ ने कोण चेतावे॥११॥
भावन्त (वाने) उपदेश वारया,

अचित वस्तु देई कारज सारया ।
पचेन्द्रि जीव रा प्राण बचाया.
हिंसक हिंसादि पाप ज टारया ॥१२॥
मूरख इणमें पाप बतावे.
ज्ञानी पूछ्यां जब जाब न आवे ।
जो हिंसा उपदेश छुड़ावे,
वाहिज माल देई ने छुड़ावे ॥१३॥
हिंसा छूटी दोनों हि ठामे,
जिण मे फर्क न दीसे कोई ।
साज सूँ हिंसा छूटी तिण मांही,
एकान्तपाप री कुमति ठराई ॥१४॥
साज सूँ हिंसा छुट्या मांही पापां,
तो घोडा दोडावण* जुक्ति थी लायां ।

---

* जैसा कि वे कहते है—
आय राजा ने इम कहे, सांभल्जयो महारायजी ।
घोड़ा देश कमोद ना, मे ताजा किया घरायजी ।

चित्त श्रावक परदेशी राय ने,

केशी समण जद धर्म बतायो ॥१५॥

घोड़ा दौड़ाई राजा ने ल्यायो,

इण में तो धर्मदलाली बतावे ।

(तो) साज दई ने हिंसा छुडावे,

(जामे) पाप बतावतां लाज न आवे ॥१६॥

सुबुद्धि प्रधान थी जितशत्रु राजा,

पाणी परिचय थी समजाणो ।

या पण धर्म दलाली जानो,

आरंभ हूवो ते अलग पिछाणो ॥१७॥

धर्म दलाली चित करे ॥१॥

त्रिणविध ठ्यावे राय ने, साँभल्ज्यो नरनारोजी ।

चित्त सरीखा उपगारिया, विरला इण संसारोजी ॥धर्म॥२॥

आप मोने सूप्या हूं ता, ते देख लेज्यो चौडेजी ।

अवसर वरते एहवो, घोडा किसडाक दोड़ेजी ॥धर्म०॥३॥

(परदेशी राजा की सध ढाल–१०)

गाजर मूला रो नाम लेई ने,
कुमती भोलाँ ने भरमावे ।
अचित देई मूलादि छुडावे,
जारी तो चर्चा मूल न लावे ॥१८॥
अचित साहाय अनुकम्पा जो होवे,
(तो) सचित समदृष्टि स्याँने खवावे ।
ऊँधा हेतु अणहुँता लगावे,
ज्ञानी रे सामे जवाब न आवे ॥१९॥

१०—अधिकार धूप में पड़े हुए जीवों के सम्बन्ध में ।

तडके तडफत जीवाँ ने देखी,
दया लाय कोई छाया* में मेले ।

* जैसा कि वे कहते हैं—
ऊपाडी जो मेले छाया, असंजती री क्रियासच लागे ।
या अनुकम्पा साधु करे तो, त्यारा पाँचों हि महाव्रत भागे ।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥१८॥

अज्ञानी तिण मे पाप बतावे,
खोटा दाँव कुगुरु यों खेले ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥
भगवति पन्दरहवे शतक मे,
वीर प्रभू गौतम ने भाखे ।
तप तपे वैसायण तपसी,
बेले-बेले पारणो राखे ॥२॥
सूर्य आताप ना लेतॉं जूँवॉं,
ताप लाग्या सूँ नीचे पडता ।
प्राणी, भूत, जीव दया भाव थी,
त्याँने उठाई मस्तक धरता ॥३॥
बाल तपस्वी दया जूँवॉं पर,
तड़का सूँ लेकर मस्तक मेले ।
जैन रो भेष ले पाप बतावे,
दया उठावण माया खेले ॥४॥
वे तो तिणरो निरवद्य केवे,

अनुकम्पा सावज दाखि छें ।
अनुकम्पा प्रभु निरवद्य भाखी,
ज्ञानी न्याय नृतर ने झेले ॥५॥
कीडा-मकोड़ा ने छाया में मेले,
असजती री व्यावच फेरे ।
भेषधारी कहे "साधु मेले तो,
त्याँरा पाँचो ही (महा) व्रत नाहिं रेवे" ॥६॥
चतुर पूछे कोई भेषधारी ने,
जूँवाँ असंजति ने थे पोखो ।
नीचे पडी ने पाछी उठावो,
महाव्रत रो थारे गयां न लागो ॥७॥
दशवैकालिक चौथे अध्ययने,
त्रसजीवाँ अनुकम्पा कानें ।
साधु ने प्रभुजी विधी बतावे,
मूलपाठ में इणविध राजे ॥८॥
उपासरा वलि उपधी माँहि,
त्रसजीव देख दया दिल लावे ।

रक्षा रे ठामे त्याने मेले,
दुःख रे ठाम नहीं पग्ठावे ॥९॥
जीव बचाया जो महाव्रत भागे,
(तो) शास्त्र में आना प्रभु क्रिम देवे ।
'भारीकर्मा लोगाँ ने भीष्ट करण ने'
दया में पाप मिथ्याती केवे ॥१०॥

११—अधिकार अभयकुमार की अनुकम्पा का

अभयकुँवर तप तेलो करने,
ब्रह्मचर्य सहित पोसो कर बैठो ।
पूरव संगति देव ने समरयो,
मन एकाग्रह राख्यो रोठो ।
अनुकम्पा सावज मन जाणो ॥१॥
तीजे दिन रे कष्ट प्रभावे,
आसण चलतों देवता देखे ।
वेला री अनुकम्पा आई,
गुणरागी हुवो तप रे लेखे ॥२॥

"अनुकम्पा कर बरसायो पानी."

मिथ्यामती यों झूठी गावे ।

अनुकम्पा तो तप री आई,

इणरो तो नाम छिपाई ने रावे ॥३॥

जल बरसावण कारज न्यारो,

तिहाँ अनुकम्पा रो नाम न आवे ।

झूठा नाम सूतर रा लई ने,

अनुकम्पा रो धर्म ठहरावे ॥४॥

(तप) संयमीरी अनुकम्पा करे कोई,

समण माहाण पर प्रेम ज लावे ।

उत्तर वैक्रिय कर गुणरागी,

दर्श उमंग धरी देव आवे ॥५॥

दर्शण अनुकम्पा गुण राग तो,

निर्मल श्रीमुख जिन फुरमावे ।

वैक्रिय करण आवण जावण री,

क्रिया तो तिण थी न्यारी बतावे ॥६॥

क्रिया योग गुण-थाग न सावज,
    तिम अणुकम्पा सावज नाँहीं ।
साँचो न्याय सुणि मृढ भड़के,
    खोटा पत्त री ताण मचाई ॥७॥

१२—अधिकार पशु बाँधने-छोड़ने का

(कहे) "साधु थी अनेरा त्रसजीवाँ ने,
    अनुकम्पा थी बाँधे ने छोड़े※ ।
चौमासी दण्ड साधु ने आवे,
    गृहस्थ रे (पिण) पाप रो बन्ध चोड़े" ॥१॥

※ जैसा कि वे कहते हैं.—
    साधु बिना अनेरा सर्व जीवों री,
        अनुकम्पा आणे साधु बाँधे बँधावे ।
    तिण ने निशीथ रे बारहवें उद्देशे,
        साधु ने चौमासी प्रायश्चित आवे ।
            आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥
            (अ० ढा० १ गा० २२)

अनुकम्पा सावज इण लेखे,
    अज्ञानी यों बात उचारे ।
'निशिथ' पाठ रो अर्थ ऊँधो कर,
    भोला डुबाया मिथ्या मझधारे ।
    अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥२॥
न्याय सुणो ह्वि निशिथ पाठ रो,
    "कोलुणवड़िया" त्रस जो प्राणी ।
डाभमुंज चरमादि रे फाँसे,
    बाँधे न छोड़े सूतर री वाणी ॥३॥
डाभ चाम लक्कड रा फाँसा,
    साधु रे पास मे रेवे नाही ।
(तो) साधु इण फाँसे किम बांधे,
    पण्डित न्याय तोलो मनमाही ॥४॥
चूरणी भाष्य मे न्याय बतायो,
    सेजातर रा घर री या बातो ।
जिणरी जागा मे साधु उतरिया,
    तहाँ ये जोग मिले साक्षातो

साधु आचार मेळातर न जाणे,
    जद वो साधु ने घर सँभलावे ।
खेत खला रे कामे जातो,
    बाँधण छोडण पशु रो बतावे ॥६॥
साधु कहे हम बाँधाँ न छोड़ाँ,
    गृहस्थ रा घर री चिन्ता न लावे ।
तब तो मुनि ने प्रायश्चित नाहीं,
    बाँधे छोड़े तो अनुकम्पा जावे ॥७॥
विशिष्ट ओगेणावन्त गवादिक,
    त्रसजीवाँ रो अर्थ पिछाणो ।
चूरणी भाष्य मे अर्थ यो कीनो,
    जूना केई टब्बा मे जाणो ॥८॥
द्वीन्द्रियादिक जीव तरस रो,
    अशुद्ध टब्बा में अर्थ बतायो ।
अर्थ मिलतो नहि दीखे,
    तिणरो न्याय सुणो चित चायो ॥९॥

लट, कीडी ने माखी, माछर,
द्वीन्द्रियादिक जीव पिछाणो ।
(जाने) चाम बेत फांसे बांधण रो,
अर्थ करे ने मन्दमति जाणो ॥१०॥

अशुद्ध टब्बा री ताण करीने,
नाही हृदय सूँ न्याय विचारे ।
"टीका में नहीं तो टब्बा में क्यों थी"
पोते पण एहवी वाणी उच्चारे ॥११॥

यो ही न्याय यहाँ पिण जाणो,
टीका विरुद्ध टब्बो मत ताणो ।
भाष्य चूरणी थी मिले ते तो साँचो,
विपरीत तो विपरीत बखाणो ॥१२॥

'कोलुण-वडिया' सूतर पाठ रा,
चूरणी भाष्य थी अर्थ विचारो ।
बाँध्या छोड्या अनुकम्पा न रेवे,
दोष लागे कीनो निरधारो ॥१३॥

कुण कुण दोष बाँधण मे लागे,
भाष्य, चूरणी टब्बा मे देखो ।
आपणी पर री घात ज होवे,
तिणरो बतायो इण विध लेखो ॥१४॥

बाँध्या थी पशु पीड़ा पावे,
आँटी खाय रखे मरजावे ।
अन्तराय बाँध्या थी लागे,
तडफड़तो अति ही दु:ख पावे ॥१५॥

पर री विराधना या बतलाई,
साधु घात री हिवे सुणो वातो ।
सींग थी मारे ने खुर थी चाँपे,
क्रोध चढ्यो करे मुनि री घातो ॥१६॥

लोकाँ में पिण लघुता लागे,
साधू होकर ढाँडा बाँधे ।
कारण चौमासी प्राछित्त,
(पिण) अज्ञानी तो ऊँधी साँधे ॥१७॥

किण कारण मुनि छोड़े नाहि,
तिणरो विवरो भाष्य में देखो ।
छोड्या वह परजीवाँ ने मारे,
कूवा खाड में पड़बा रा लेखो ॥७८॥
चोर हरे अटवी में जावे,
सिंहादिक छूटा ने मारे ।
इत्यादि हिंसा रा दोष बताया
साधु तो चोरे चित धारे ॥७९॥
छूटा सूं प्राणी दुखिया होसी,
तो दयावान छोड़न नहीं चावे ।
साधु तो अनुकम्पा रा सागर,
वे छोडण मन में किम लावे ॥८०॥
(जो) बाँधे छोडे अनुकम्पा न रेवे,
तिण थी चौमासी प्राछित आवे ।
करुणा, दया, शान्ति ऋषि चावे,
तिण रो दण्ड मुनी नहि पावे ॥८१॥

अनुकम्पा लाया में प्राछित केवे,
  झूठा नाम सुतर रा लेवे ।
भाष्य, सुतर, चूरणि, टब्बा में,
  कठहि न चाल्यो तो पिण केवे ॥२२॥
अनुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
  झूठा नाम लेता नहि लाजे ।
अज्ञान अँधेरे स्याल ज्यों कूके,
  ज्ञान प्रकाशे डरकर भाजे ॥२३॥
खाड में पड़तां ने अग्नि में जलतां,
  गिह थी स्नाता न्याय जाणे ।
लाय दया बांधे छोड़े तो,
  प्राछित नाहीं अर्थ प्रमाणे ॥२४॥
प्राचीन भाष्य अरु चूरणि में,
  करुणानुकम्पा करणी बताई ।
मरतां जाण बांधे अरु छोड़े,
  इणविधि मे कछु प्राछित नाई ॥२५॥

त्रस अर्थ त्रेन्द्रियादिक करने,

तथा थी बाँध्या दोष बतावे ।

(पोते) पाणी में माखी डर मुरझाई,

कपडा में बाँध ने मूर्छा मिटावे ॥२६॥

मूर्छा मिट्याँ मूं छोड उडावे,

तिण में तो ते पिण धर्म बतावे ।

(तो) अनुकम्पा थी बाँध्या छोड्या में,

पाप परूप के भेष लजावे ॥२७॥

साधू पण त्रसजीव कहीजे,

कारण करुणा थी बाँधे ने छोडे ।

भेषधार्यां रे अर्थ प्रमाणे,

पाप हूँसी वाँरी शरधा रे जोडे ।

"साधू ने करुणा थी बाँध्या छोड्या

धर्म हुवे" यूँ ते पिण बोले

अर्थ कहो यह क्यों थी लाया ?

सूतर पाठ मे तो नहि

तब तो कहे म्हे जुगतां से केवाँ.
पण्डित त्याने उत्तर देवे ।
"भाष्य चूरणि" "टब्बा" री युक्ति,
क्यों नहि मानो? सुगुरु रो केवे ॥३०॥
मन रे मते मनहीणा बोले,
शुद्ध-परम्परा सूत्र ने ठेले ।
माणी ने तो बांधे अरु छोड़े,
दूजा जीवाँ री कुयुक्ति क्यों मेले ? ॥३१॥
सूत्र निशीथ उद्देशे द्वादश,
डगरे नाम थी द्वन्द्व मचायो ।
तिण कारण यो मैं कियो खुलासो,
सूत्र रो साँचो अर्थ बतायो ॥३२॥
जिण बाँध्या अनुकम्पा न रेवे,
तिण रो प्रायश्चित निश्चय जाणो ।
बाँध्या छोड्याँ जीव बचे तो,
दण्ड नहीं तनो खैंचाताणो ॥३३॥

१३–अधिकार व्याधिमिटावण विषयक

व्याधि बहुत कोढादिक सुण ने,
वैद्य अनुकम्पा तिणरी लावे ।
प्रासुक औषध दु ख मिटावे,
निर्लोभी ने पिण पाप बतावे ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥

दु ख न देणो तो पुन मे बोले,
दु ख मिटावा मे पाप बतावे ।
दु ख मिटायो तिण दु ख न दीधो,
मन्दमती क्यां पाप लगावे ॥२॥

जैन रा देखो अङ्ग उपाङ्गो,
वेद पुराण कुरान मे देखो ।
दु ख न देणो अरु दु ख मिटाणो,
दोनाँ रो शुद्ध बतायो लेखो ॥३॥

दु ख मिटावा मे पाप घणेरो-
मन्दमती बिन दूजो न बोले ।

घोर अँधारो हिरदा मे छायो,
भोलाँ ने नाख दिया झकझोल ॥४॥
दु ख देई कोई दु ख मिटावे,
तिण रो नाम तो मुख पर लावे ।
दु:ख दिया बिना दु ख मिटावे,
इण रो तो नाम मन्द छिपावे ॥५॥
साधू थी दूजा ने साता जो देवे,
पाप लगे अज्ञानी केवे ।
नारिभोग दृष्टान्त देई ने,
दुर्गुण केई मिथ्यामत सेवे ॥६॥
नारिभोगे पंचेद्रिय हिंसा,
मोह उदेरणा दोनाँ रे होवे ।
यो दृष्टान्त दया (अनुकम्पा) रे जोड़े,
जो देवे वो भव-भव रोवे ॥७॥
...य छुडावण तिरिया सेवण,
... ने कोई सरीखा केवे ।

त्याँ दुर्गुण रो भेद न जाण्यो,
खोटा हेतु कुपन्थी देवे ॥ ८ ॥
रोग तो वेदनीकर्म उदय मे,
नारिभोग मोहकर्म मे जाणो ।
रोग मिटाया दुःख मिट जावे,
नारिभोग मोह वधवा रो ठाणो ॥९॥
रोग मिटावा मे पाप घणेरो,
नारीभोग समान वतावे ।
माता रो भोग अरु रोग मिटावण,
तिणरी श्रद्धा मे सरीखो थावे ॥१०॥
कोई माता वेन रो रोग मिटावे,
कोई तिण थी भोग कुकर्मी चावे ।
दोनों पापकर्म रा कर्त्ता,
तुल्य कहे ते धर्म लजावे ॥११॥
लब्धिधारी री लब्धि प्रभावे,
रोग मिटे सूतर मे वतायो ।

(धर्म) लब्धि-धारी मुनि रे परतापे,
पाप वैर यां कलंकित न आयां ॥१२॥
दुःख छूटे मुनि रे परतापे,
या तो बात सभी जग जाणे ।
पर-स्त्री पाप मुनि परतापे,
ऐसी तो कोई मूरख माने ॥१३॥
दुःख मिट्यो दुर्गुण से थे केवो,
तो साधु प्रताप दुर्गुण मानो ।
साधु थी दुर्गुण वधतो न समझो,
तो रोग मिट्यो दुर्गुण से न जानो ॥१४॥
जिन-जिन देश तीर्थङ्कर जावे,
सौ-सौ कोसाँ रो दुःख मिट जावे ।
धान (रो) उपद्रव मूल न होवे,
'ईति' मिटण अतिशय यो थावे ॥१५॥
मिरगी रे रोग मनुज बहु मरता,
जिनजी गया मिरगी नहि रेवे ।

नाखो मनुष्य मरण थी बचिया,
मिथ्याती इणने दुर्गुण केवे ॥१६॥
देश री सेन्या देश ने मारे,
स्वचक्री नृप रो भय थावे ।
ए गुणतीस अतीमे प्रभावे,
भीति (भय) मिटे जन शान्ति पावे ॥१७॥
'पर' राजा री सेना आई,
देश लूटे वो दुःख अति देवे ।
प्रभु परतापे भय मिट जावे,
तीस अतिशय सूतर केवे ॥१८॥
अति वर्षा बहु जन दुःख पावे,
नदी री बाढ़ें जन घबरावे ।
जिण देशे श्री जिनजी विराजे,
तिण देशे अतिवृष्टि न थावे ॥१९॥
विन वृष्टी दुःख जग मे मोटो,
दुष्काले होवे धर्म रो टोटो ।

देश ने प्रभुजी वहु गुण होसी,
    तिण कारण प्रभु धर्म वखाणे ॥२८॥
जीव देश अरु समण भिखारी (णे),
    राजा थी योगे दुःख मिट जासी ।
आरत मिटसी गुण मे भाख्यो,
    जाण्यो जीव घणा सुख पासी ॥२९॥
तिम रोग आरत मिटियो पिण गुण मे,
    भव जीवाँ ! शङ्का मत आणो ।
विन स्वारथ थी वैद्य मिटावे,
    तो तिण ने गुण (पिण) निश्चय जाणो ॥३०॥
वैद्य स्वारथ बुद्धि आरम्भ ने,
    गुण रो मुनिजन नाँय वखाणे ।
पर-उपकारी दुःख मिटावे,
    तिण मे एकंत पाप न जाणे ॥३१॥
आरम्भ कर कोई (मुनि) वन्दन जावे,
    स्वारथ बुद्धी आणे ।

आरम्भ स्वारथ गुण मे नाँही
वन्दन भाव तो गुण मे जाणे ॥२२॥
शुद्ध भाव अरु बिन आरम्भ थी,
मुनि वन्द्या अधिको फल पावे ।
तिम कोई रोगी रो रोग मिटावे,
(तो) वैयावृत्य गुण रा फल पावे ॥२३॥

१४—अधिकार साधु की लब्धि से साधु की प्राण रक्षा का

लब्धिधारी रा 'खेलादिक' सूं,
सोले रोग शरीर सूँ जावे ।
साधू ने रोग सूँ मरता बचावे,
(तो) ज्याँ पुरुषाँ ने भी पाप* बतावे ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥

* जैसा कि वे कहते हैं—
लब्धिधारी रा खेलादिक सूं,

१५—अधिकार मार्ग भूले हुए को साधु किस कारण रास्ता नहीं बतावे

अटवी रे माँहि गृहस्थी भूल्याँ,
साधु ने मारग पूछण लागे ।
किण कारण मुनि नाहि बतावे,
"अर्थ भाष्य" मे देखो सागे ।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥
मुनि रे बताये मारग जाताँ,
चोर कदाचित उणने लूटे ।
सिंहादिक श्वापद दु ख देवे,
तिण उपसर्ग थी प्राण भी छूटे ॥२॥
वा, तिण रस्ते गृहस्थी जाताँ,
मृग आदिक जीवाँ ने मारे ।
तिण कारण दयावन्त मुनीश्वर,
बतावा रो परिचय टारे ॥३॥

इसडा सूत्र रा सरल अरथ ने,
अज्ञानी तो उलटा मोडे ।
अनुकम्पा कर मार्ग बतायाँ,
चार मास चारित्त*तोड़े ॥४॥
"भाष्य चुरणि" अरु मूल मे देखो,
अनुकम्पा रो नाम ही नाँही ।
तो पिण अनुकम्पा रा द्वेषी रे,
झूठ बोलण री लाज न काँही ॥५॥

---

*-जैसे कि वे कहते हैं—

गृहस्थ भूलो ऊजड वन में, अटवी ने वले ऊजड जावे ।
अनुकम्पा आणी साधू मार्ग बतावे, तो चार महीनाँ रो चारित्र जावे ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ।
(अनु० ढा० १ गा० २७)

हितकारी मुनि सर्व जीवाँ रा,
	अनुकम्पा रो प्राछित नाँही।
समदृष्टी तो सतर माने,
	कुगुरु री वात देवे छिटकाही ॥ ॥६॥

प्रथम ढाल सम्पूर्ण

दोहा

समकित रो लक्षण कह्यो, अनुकम्पा प्रभु आप ।
पापबन्ध तिण थी कहे, खोटी थापे थाप ॥१॥
अनुकम्पा साधू करे, गृहस्थ करे मन लाय ।
सुकृत लाभ सहु ने हुवे, तिण मे शंका नाय॥२॥
अनुकम्पा अभयदान ने, सर्व श्रेष्ठ कह्यो दान।
"सुगडायंग" मे देख लो, तज दो खैंचातान॥३॥
साधु वन्दे साधु ने, गृहस्थ वन्दे चितचाय ।
उच्चगोत्र रो फल लहै, नीचो गोत्र खपाय ॥४॥
गाडी घोड़ा साज सूँ, गेही वन्दन जाय ।
साधू तिम जावे नही, पण्डित! समझो न्याय॥५॥
अनुकम्पा वन्दन जिसी, दोनॉ ने सुखदाय ।
कारण न्यारा जाणजो, साधु गृहस्थ रे मॉय॥६॥
सावज कारण सेव ने, गेही (गृहस्थ)वन्दन जाय ।
साधू, वन्दन कारणे, कल्प बिगाड़े नाय ॥७॥
तिम अनुकम्पा कारणे, कल्प न तोड़े साधु ।
जाणे अनुकम्पा भली, वन्दन सम निर्बाधु ॥८॥

अनुकम्पा कारण कोई (गृहस्थ)
सावज करे जो (कोई) काम ।
(ते) कारण अनुकम्पा नहीं,
करुणा (अनुकम्पा) निरवद्य नाम ॥९॥

सावज कारण सेवतॉ, वन्दन सावज नॉय ।
अनुकम्पा तिमजानज्यो, निरमल ध्यान लगाय।१०।

भाषा सुमती थी करे, वन्दन नो उपदेश ।
तिम अनुकम्पा नो करे, मुनि रे राग न द्वेष ॥११॥

गेही पिण समभू हुये, विवेक मन मे लाय ।
न अनुकम्पा करे, वैसो ही फल पाय ।१२।

कूड़ी खेच सूॅ, अनुकम्पा उत्थाप ।
न्दन रा तो लोलुपी, जोर सूॅ मॉडे थाप ।१३।

कारण कारज भेद ते, कुगुरु खोले नाय ।
कारण ने आगे करि, करुणा दीवि उठाय ।१४।

वन्दन कारण प्रगट मे, बहुविध आरॅभ थाय ।

कुगुरु देखे तोहि पिण, वन्दन वर्जे नाय ।१५।
रस्ता री सेवा तणो, अतिशय लाभ बताय ।
गृहस्थी राखे साथ मे, भोजन खाता जाय ।१६।
इणविध सेवा ना कही, सूतर मे जिनराज ।
प्राछित पिण भाख्यो प्रभु, संजम राखण काज ।१७।
खोटी सेवा थाप ने, लोपी जिनवर कार ।
अनुकम्पा उत्थाप ने, डूबा काली धार ।१८।
सावज कारण साधु ने, वरज्या सूतर माँय ।
(ते)कल्प बतायो साध रो, करुणा सावज नाय।१९।
साधू कल्प रे नाम सूँ, भोलाँ ने भडकाय ।
अनुकम्पा सावज कहे, खोटा चोज लगाय ।२०।
साधू ने वर्जी नहीं, अनुकम्पा जिनराज ।
निज-निज कल्प सँभालने, करने सारे काज ।२१।
करुणा(अनुकम्पा)करणी साध ने, भाखूँ सूतरसाख ।
भवजीवाँ ! तुम सांम्हलो, वीर गया छे भाख ।२२।

इम बाँध्या सूँ तड़फे प्राणी,
रखे मरजावे इसडी जाणी ॥ ३ ॥
इण कारण बाँधे नाँई,
अनुकम्पा घणी घट माँई ।
मरता जाणे तो बाँधे ने खोले,
दोष नाही अर्थ यूँ बोले ॥४॥
साधुजन रा पातरा माँही,
चिड़ियो उन्दिर पड़ियो आई ।
भेषधारी पिण काढणो केवे,
विने काढ़्याँ दया नहिं रेवे ॥५॥
(तो) अनुकम्पा थी छोड़्याँ पापो,
एहवी खोटी करो किम थापो ।
अनुकम्पा निरवद्य जाणो
तिणरा साधु रे नहि पचखाणो ॥६॥
साधू पातरा सूँ जीव काढे,
तामे धर्म कहे चोड़े-धाड़े ।

अस्ती यदि जीव छुडावे,
पाप लागा गे हल्लो उड़ावे ॥७॥
अस्ती रे मूँज रा पासा,
पशु बँध्या पावे त्रासा ।
जो उणने वो नाहि खोले,
पाप लागे सूत्तर यो बोले ॥८॥
जो खोले तो पाप सूँ वचियो,
हुवो अनुकम्पा रो रसियो ।
भेषधारी उलटी सिखावे,
अस्ती (रे) छोड़्याँ पाप बतावे ॥९॥
तव उत्तम नर कोई प्राणी,
भेषधारयाँ ने वोल्यो वाणी ।
थारे पातरादिक रे मॉही,
जीव तड़फ रयो दु ख पाई ॥१०॥
तिणने जीवतो काढो के नॉही,
के मरवा देवो असंजति ताही ।

कहे जीवतो काढाँ मे प्राणी,
नहि काढ्याँ पाप लेवो जाणी॥११॥
साधु नहि काढ़े तो पापी,
या तो ठीक तुमे पिण थापी ।
(जो) जीव छोड़्याँ मे पाप न लागे,
दयाधर्म रो काम है सागे ॥१२॥
तो अग्नी ने पाप म केवो,
छोड़ मिथ्यामत तुम देवो ।
साधु उपधी सूँ जीव मरजावे,
तिणरो पाप साधु ने थावे ॥१३॥
गेही उपधी सूँ जीव मरजावे,
तिण रो पाप गृहस्थ पिण पावे ।
साधु छोड़ तो साधु ने धर्मो,
गेही ने किम कहो पाप [illegible] १४
उपकरण (पिण) दोनाँ रा [illegible]
[illegible]

निज बोली रो बन्धन कॉंई,
मोह मिथ्या री छाक रे मॉंही ।
ज्ञान केरो अंजन ऑंजो,
अब मिथ्या बोलतॉं लाजो ॥ १८ ।

२--अधिकार लाय बचाने का ।

(कहे) "बस्ती रे लागी लायो,
घर बारे निसर्‌यो न जायो ।
बलतॉं जीव 'बिलबिल' बोले,
(कोई) साधू जाय किवॉड न खोले ॥१॥
उत्तर-(कोई) खोले तिण ने पाप बतावे,
(वली) धर्म शरध्या मिथ्यात लगावे ।
नर बचिया पाप कहे मोटो,
जॉंरो हिरदो हुवो घणो खोटो ॥२॥
थीवरकल्पी मुनि पिण खोले,
ठाणायंग चोभंगी रे ओले ।

तब और तो अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण
कहा कि हे भगवन् !—

पा तव कृपा से ज्ञान, माया भ्रम हु
तव वचन पालन हेतु है हरि पार्थ अब

अब सञ्जय राजा धृतराष्ट्र से कहते हैं

श्रीकृष्ण अर्जुन का सुना सम्वाद हम
जो परम अद्भुत और तन रोमाञ्चकारी है
यह गुप्त योग-प्रसङ्ग जो श्रीकृष्ण जी
उसको श्रवण की शक्ति व्यास प्रसाद से हम
राजन् ! जनार्दन पार्थ की इस पुण्य अद्भ
करके स्मरण अति हर्ष हो हमको हमारे
वह परम अद्भुत रूप हरि का चित्त मे
आश्चर्य भी आनन्द भी होता हमे राजन्

मेरे विचार में तो यह बात आती है

श्री कृष्ण तथा धनुर्धर पार्थ, राजन्
ति, लक्ष्मी विजय और विभूति भी रहत

ॐ अठारहवाँ अध्याय समाप्त